दिव्य पथ

(जीवन परिचय – श्रद्धेय ए. नागराज)

प्रणेता

मध्यस्थ दर्शन सह अस्तित्ववाद

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन

सुरेन्द्र पाल

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर – 484886 म.प्र. भारत

लेखक :
सुरेन्द्र पाल
© सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित

मुद्रण :
अगस्त 2015
फरवरी 2017

सहयोग राशि :
60/–

लेखकीय

जब मैंने प्रथम बार 'जीवन विद्या परिचय षिविर' जून 2010 में भाग लिया तभी से आदरणीय बाबाजी (श्री अग्रहार नागराज जी बनाम ए. नागराज जी) के जीवन को लेकर एक उत्सुकता ने जन्म लिया जो 'मध्यस्थ दर्शन' के अध्ययन के दौरान गहराती गयी। इस मानव का कैसा व्यक्तित्व होगा, जन्म के समय क्या परिस्थितियाँ रही होंगी, कैसे संस्कार मिले होंगे, कैसी शिक्षा रही होगी, क्या किसी विशेष घटना ने उन्हें इस अनुसंधान के लिए प्रेरित किया होगा? क्या ये सामान्य मानव से कुछ अलग होंगे? आखिर, कैसे यह चिरापेक्षित और अभी तक रहस्यमय माना जाने वाला अद्भुत ज्ञान उनसे प्रगट हो गया? मुझे लगता है इस तरह की उत्सुकता 'जीवन विद्या अथवा मध्यस्थ दर्शन' के संपर्क में आये प्रत्येक व्यक्ति के मन में होती होगी। आखिर, मानव इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं ही कितने जब किसी मानव ने अंतिम अथवा परम सत्य को जानने के लिए अपना सब–कुछ दाँव पर लगा दिया हो?

यों तो आदरणीय बाबाजी द्वारा रचित साहित्य तथा उनके उद्बोधनों में उनके साथ रहे कुछ साथियों से सुने संस्मरण में बाबाजी के जीवन की कुछ झलकियाँ मिलती रहीं, परन्तु उन सब ने भी आग में घी डालने का ही काम किया तथा बाबाजी की मनःस्थिति की यात्रा के बारे में और जानने की उत्सुकता तीव्र होती गयी। इसलिए जब अहमदाबाद में एक गोष्ठी में एक साथी ने बाबाजी की जीवनी की बात उठाई तो मैंने बाबाजी के साथ रह रहे कुछ शिष्यों (साधन भाई, सोम भाई, अंजनी भाई आदि) से इस बिंदु पर चर्चा करने का निर्णय लिया। संयोग से कुछ दिन बाद (1–10 फरवरी 2014) ही अध्ययन के लिए अछोटी (रायपुर, छत्तीसगढ़) जाना था तथा उस दौरान बाबाजी का वहाँ रहना भी तय था। साथियों से बात की तो उन्होंने बताया कि वे कई बार इस बारे में समय–समय पर बाबाजी से बात करते रहे परन्तु किसी कारणवश निर्णय नहीं हो पाया और उन्होंने मुझे बाबाजी से बात करने

का परामर्श दिया।

बाबाजी से बात हुई तो उन्होंने इसकी अनुमति दे दी तथा इसकी जिम्मेदारी भी मुझे मिली। तुरंत ही फरवरी 2014 के अंतिम सप्ताह में लगभग 10 दिन अमरकंटक में बाबाजी व परिवार के सदस्यों के साथ रहकर सबसे बात कर इसको लिखना प्रारंभ कर दिया। इस पुस्तक की वस्तु का मूल स्रोत आदरणीय बाबाजी ही हैं। इसमें लिखी हुई अधिकतम सूचनायें बाबाजी ने मुझे स्वयं बताई है और कुछ बातों का वर्णन उन्होंने अपने उद्‌बोधनों में समय–समय पर किया है जिनको प्रकाशित पुस्तकों में यहाँ–वहाँ पर पहचाना जा सकता है। साथ ही बहुत सी बातें मुझे उनकी सुपुत्री सुश्री शारदा अम्बाजी, पुत्र वधू श्रीमती सुनीताजी तथा श्रीमती पूजाजी, सुपुत्र श्री मार्कण्डेय जी एवं श्री लक्ष्मीप्रसाद जी तथा साधन भाई जी (जो आदरणीय बाबाजी व परिवार के साथ 22 वर्षों से रह रहे हैं) श्रीमती महिमा जी, श्रीराम भाई जी (जो अपनी पत्नी श्रीमती गौरी जी के साथ लगभग 2 वर्ष से परिवार में रह रहे हैं) तथा अन्य जिज्ञासुओं से भी पता चली जो बाबाजी द्वारा अनुमोदित कराई गयी। बाबाजी मुझे इस बात का भी विशेष ध्यान दिलाते रहे कि इस पुस्तक के लेखन में भी उनके व्यक्तिगत महिमामंडन से दूर रहा जाये। हमेशा मुझे मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) के महत्व को ही बताते रहे। बाबाजी के साथ वार्तालाप में इस पुस्तक का प्रयोजन भी निश्चित हुआ – इस पुस्तक को पढ़ने वाले को 'मध्यस्थ दर्शन' के अध्ययन में रूचि उत्पन्न हो पाना। आशा है कि यह प्रयोजन सफल होगा।

इस पुस्तक को लिखने की अवधि में मुझे स्वयं में स्पष्टता बढ़ती दिखाई दी और एक तृप्ति का अहसास बना रहा है। फिर भी निवेदन है कि जहाँ पर भी मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) के मूल सिद्धान्तों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है और कहीं भी उसमें आदरणीय बाबाजी द्वारा रचित ग्रंथों (वांग्मय) में वर्णित वस्तु से विरोधाभास जैसा दिखता है तो वांग्मय को ही सही माना जाय। इस पुस्तक में किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी केवल मेरी ही है।

इस पुस्तक को लिखने में मुझे अनेक साथियों का योगदान मिला है जिसके लिए मैं सभी का आभारी हूँ। प्रत्यक्ष रूप में मिले योगदान के लिए मैं अम्बा दीदी, साधन भाई, बी.आर. भाई, श्रीराम भाई, गौरी बहिन, हिमांशु भाई का आभारी हूँ।

मैं उन सभी मनीषियों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मध्यस्थ दर्शन के उद्घाटन एवं पावन धरा पर अवतरण की यात्रा में सहयोगी एवं सहयात्री की भूमिका निभाई और आज सशरीर हमारे बीच नहीं हैं। इनमें सर्वप्रमुख माताजी नागरत्ना देवी, श्री नंदकुमार श्रीवास्तव, श्री यशवंत कुमार सिंधु, श्री एन.एस. पुराणिक, श्री अशोक शर्मा, डॉ. यशपाल सत्य और अनेक मनीषियों को मैं श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ।

इस अवसर पर मेरे अग्रज एवं वरिष्ठ भ्राता–भगिनियों श्री राजन शर्मा, श्री रणसिंह आर्य, श्री गणेश बागड़िया, अंजनी भैया एवं परिवार, श्रीमती अनिता शाह को परोक्ष रूप से सहायता के लिए स्मरण कर गौरवान्वित अनुभव करता हूँ।

आस्था, श्रम व सेवा

भारत वर्ष के कर्नाटक राज्य में स्थित हासन जिले में रामनाथपुर के पास अग्रहार गाँव देखने सुनने में बिल्कुल एक साधारण गाँव जैसा ही है। आधुनिक शिक्षा एवं तकनीकी विकास का प्रभाव हर तरफ फैला हुआ दिखता है। आज लगभग हर घर में टेलीविजन, कम से कम एक मोटर साईकिल, फ्रिज, फोन और बिजली का प्रकाश है। ग्राम पंचायत द्वारा घर–घर पानी की आपूर्ति है। आधुनिक शिक्षा है। गाँव में करीब 200 घर है और आस–पास के शहरों से सड़क से जुड़ा है। किन्तु, आज कोई वेदमूर्ति (वेदों का ज्ञाता तथा अध्ययन कराने वाला) हथेली पर चिराग लेकर ढूंढ़ने से अग्रहार तो क्या पूरे कर्नाटक में भी मिलना मुश्किल सा लगता है।

परन्तु बीसवीं सदी के दूसरे दशक में इस गाँव की तस्वीर भी देश के अन्य गाँव की तरह आज से बिल्कुल अलग थी। मिट्टी का तेल जलाकर रौशनी होती थी, कुओं से पानी लिया जाता था तथा पारंपरिक शिक्षा बच्चों को दी जाती थी।

गाँव में करीब 100 घर थे, जिनमें 30 वेदमूर्ति सांकेति ब्रह्मिन कहलाने वाले परिवारों के तथा शेष परिवार अन्य मिले–जुले जातियों के थे। उस समय अग्रहार में लगभग 50 वेदमूर्ति थे। वेदमूर्ति परिवारों में ज्यादा से ज्यादा छुआछूत तथा कट्टरपंथी परंपरा थी। अन्य जातियों के साथ में तो सोचना ही असंभव है, यदि आपस में भी कभी खाना खाते समय एक दूसरे को छू लिया तो तुरंत ही दोनों को खाना छोड़कर उठना होता, ठन्डे पानी में डुबकी लगाना होता, जनेऊ बदलना पड़ता फिर पंच नारियल बुजुर्गों को दान देकर ही कुछ कर सकते थे। ऐसे ही एक वेदमूर्ति युगल श्री श्रीनिवास शर्मा एवं श्रीमती सुबम्मा के सुपुत्र श्री नरसिंह शर्मा और उनकी पत्नी श्रीमती वैंकम्मा घोर वैदिक परंपरा से अपना जीवन जी रहे थे। दोनों को ही विद्वता विरासत में मिली हुई थी। श्रीमती वैंकम्मा के बड़े भाई श्री विश्वेश्वरैया ने अनेक विद्वानों को वेदों की शिक्षा दी थी जिनमें श्रृंगेरी के शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखर भारती भी शामिल थे, और श्रीमती वैन्कम्मा स्वयं आयुर्वेद तथा ज्योतिष में पारंगत थी। यह महारथ श्रीमती वैंकम्मा ने अपने पिताजी से प्राप्त की थी। इन्होंने ही सन् 1920 की जनवरी 14 को सायं 7 बजे (मकर सक्रांति के दिन) अपनी पाँचवी संतान के रूप में एक शिशु को जन्म दिया, जिसका नाम नागराज रखा गया।

बालक नागराज ने जब होश संभाला तो पाया कि सबसे बड़ी बहिन सुब्बालक्ष्म्मा और उनसे छोटी सीतालक्ष्म्मा की शादी हो चुकी थी। बड़े भाई अनंत नारायण शर्मा गाँव के स्कूल में पढ़ने जाते थे और अंग्रेजी भाषा में भी बात करते थे। तीसरी बहिन रूक्मानाम्मा नागराज से लगभग 2 साल बड़ी थी और छोटे भाई रामनाथ अभी लगभग 1 वर्ष के रहे होंगे।

होश संभालने के बाद की यदि कोई घटना का वर्णन करने की बात आती है तो वह थी बालक नागराज का अपने मामाजी के साथ मेले में जाने का वृतांत। एक दिन मामाजी अपने नन्हें भांजे बालक नागराज को कन्धों पर बिठाकर गाँव में लगे मेले को दिखाने गए। वहाँ पर एक जादूगर अनोखे करतब दिखा रहा था। वह एक बांस के टुकड़े पर उसे बिना जमीन में गाड़े चढ़ गया तथा उसके बाद उसकी पत्नी और बच्चा भी चढ़ गये। वह देखकर बालक नागराज को अच्छा लगा। और भी बहुत कुछ किया, उसने अपने लड़के को काट दिया और उसका खून भी दिखाया। तत्पश्चात्, उसने कंकड़ पत्थर लिया, एक सूप में डाला, कपड़े से ढका और डुगडुगी बजाने लगा। फिर, लोगों को दिखाया कि वह सब सोने का मोहर बन गया। लोगों को मोहर देने लगा, एक मोहर मामाजी को भी दिया। उसके बाद उसने उसी सूप में भीख मांगना शुरू कर दिया। बालक नागराज ने मामाजी से पूछा, ''इसने तो अभी अभी सोना बनाया है फिर भीख क्यों मांगता है?'' मामाजी बोले, ''क्या बोलते हो? चुप रहो, चुप रहो?, मेला घूमने के बाद घर आये और खाना खाया फिर, जेब से मोहर को निकाल देखा तो वह कंकर पत्थर था। बालक नागराज ने निष्कर्ष निकाला कि वह सब तो मूर्खता का कार्य था और तब से ही चमत्कार को नमस्कार करना बेवकूफी मान लिया।

बालक नागराज के बचपन से ही घर में किसी चीज की कोई कमी नहीं थी। डेढ़ एकड़ जमीन थी जिसमें नारियल, सुपारी, पान एवं केला पैदा किया जाता था, और गाएं थी जिनसे दिन में लगभग 40 किलो दूध हो जाता था। अटारी में सूखा नारियल और गुड़ रखा होता था तथा उपलब्ध रुपये–पैसे दीवारों से ईट निकालकर बने गड्ढे में रखे रहते थे। दूध, फल व सब्जियों का उत्पादन परिवार की आवश्यकता से कहीं अधिक होता था परन्तु इन वस्तुओं को बाजार में या फिर गाँव के अन्य लोगों को बेचने की बात सोची भी नहीं जाती थी। घर से बाहर के आंगन में एक बड़े बर्तन में दूध तथा पास में ही फल व सब्जियों को रख दिया जाता था

तथा गाँव के लोग, जिनको इन वस्तुओं की आवश्यकता होती थी, चुपचाप लेकर चले जाते थे। यह इंतजाम कुछ इस तरह होता था कि घर के लोग अन्य लोगों को वस्तुएं ले जाते हुए देख नहीं पाते थे। इस कार्यक्रम को देखकर एक दिन बालक नागराज ने अपनी माताजी से पूछा, ये सब लोग इन वस्तुओं को हमसे मांग कर क्यों नहीं लेकर जाते, इस तरह छुप कर क्यों ले जाना होता है? माताजी ने जवाब दिया, ''मांगना किसी को अच्छा नहीं लगता, ले जाने वाले को दीनता का अहसास न हो इसलिए हमने ऐसा प्रबंध किया है।'' यह सुनकर बालक नागराज सोचने लगे कि परिवार वाले किस तरह से दूसरों के सम्मान का ध्यान रखते हैं।

बालक नागराज ने देखा कि उनकी माताजी रोज सबेरे रंगोली सजाती है और उसमें उस दिन का पंचांग बनाती, लोग उस पंचांग को देखने आते थे और खुश होते थे। प्रतिदिन गायों के दूध की दही जमाना तथा उसे मथना, मक्खन निकालना, अनाज पीसना, कूटना इत्यादि कार्य करती थी। बालक नागराज भी उसमें शमिल होकर यथाशक्ति योगदान देते थे। अपनी माताजी की विद्वता, आयुर्वेद, ज्योतिष तथा घोर सेवा देखकर बालक नागराज गद्–गद् हो जाते थे।

पिताजी भी प्रतिदिन सवेरे 4 बजे उठने के बाद नहाकर वेदपाठ करते तथा पूजा करने के बाद खेत में जाकर परिश्रम करते थे। करीब 9 बजे वापस आने के बाद फिर नहाकर पूजा पाठ, नैवैद्य करते तथा खाना खाकर विश्राम करते। फिर खेतों में जाकर श्रम करते। वापस आकर फिर वही क्रम दोहराते, हवन करने के बाद खाना खाकर सो जाते थे।

माताजी व पिताजी की इस दिनचर्या में अधिकतर एक और बात शामिल रहती थी। घर में मेहमानों का आना बना ही रहता था। यों तो ज्यादातर रिश्तेदार परम्परानुसार गाँव में ही बसते थे। परन्तु गाँव आवागमन की दृष्टि से सही जगह स्थित होने से यात्रियों का रात को रुकना होता रहता था। माताजी सबके लिए खाना बनाती थी। बालक नागराज भी खुशी–खुशी अपने बड़े भाई के साथ लोगों के नहाने के प्रबंध में सहयोग करते थे। रात्रि 12 बजे भी लगभग 20 अतिथियों के नहाने, खाने व सोने का कार्यक्रम बालक नागराज ने कई बार देखा। इस प्रकार परिवार का अतिथियों की सेवा करना तो बालक नागराज को अच्छा लगता था किन्तु हिंदू धार्मिक परंपरा के अंतर्गत वर्णाश्रम के अनुसार कुछ विशेष जाति वाले

अतिथियों के रूकने की व्यवस्था अंदर तथा कुछ अन्य जाति वाल अतिथियों को सबसे बाहर ठहराने की प्रथा उन्हें बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी (यहीं से कहीं दूर में शंका का जन्म होते दिखता था)। गाँव में केवल दो ही परिवार इस तरह यात्रियों की सेवा करते थे।

इस तरह घोर विद्वता, घोर श्रम एवं घोर सेवा के वातावरण में बालक नागराज के जीवन की शुरूआत हुई।

शिक्षा

आज तो स्थिति ऐसी है कि जन्म से पहले ही माता–पिता को बालक की शिक्षा को लेकर चिंता आरंभ हो जाती है। जिसके साथ महाचिन्ता यह जुड़ी होती है कि बच्चा बड़ा होकर कैसे कमाएगा, क्या नौकरी करेगा और अपने बच्चे पाल भी पायेगा कि नहीं? परन्तु, सन् 1925 में शायद ही कोई दम्पति अपनी संतान के भविष्य को लेकर चिंतित होता होगा। नागराज के माता–पिता व परिवार के अन्य लोग भी परिश्रम से परिवार की आवश्यकता की वस्तुएं पैदा कर लेते थे तथा मजे से जीवन यापन कर रहे थे साथ ही ऐसी आशा रखते थे कि बच्चे भी श्रमपूर्वक अपना पेट भर सकेंगे। नौकरी को तो महापाप मानते थे। इच्छा थी तो यही कि बच्चे भी वैदिक परम्परा को आगे बढ़ायें। वेदों को पढ़ने के लिए शिक्षा की आवश्यकता समझते थे।

अतः बालक नागराज जैसे ही पांच वर्ष के हुए, उन्हें भी स्कूल भेजने की तैयारी शुरू हुई। परिवार में एक और वेदमूर्ति गढ़ने को लेकर हर कोई आशान्वित था। परन्तु, एक अड़चन पैदा हो गई। बालक नागराज का मन स्कूल जाने को नहीं हुआ। तुरंत ही परिवार वालों द्वारा हाथ–पैरों का प्रयोग किया गया और जबरदस्ती स्कूल भेजा गया। मार खा–खा कर हलुआ बनने के बाद जैसे–तैसे नागराज ने स्कूल जाना प्रारंभ किया और बालू (रेत) में ऊंगली से कन्नड़ भाषा सीखना शुरु किया (घर में संकेती बोली जाती थी, जो कि तमिल व कन्नड़ का मिश्रित स्वरूप थी)। अध्यापक घर में ही रहते थे, इसलिए पढ़ने से छुटकारा नहीं दिखता था। स्कूल में शरीर स्वास्थ्य के बारे में जो थोड़ी–बहुत बातें बताई जाती थी, वे जरूर उन्हें अच्छी लगती थी परन्तु स्कूल में उनका मन बिल्कुल भी नहीं लगता था। उनको स्कूल में दी जाने वाली जानकारी किसी तरह से दिन–प्रतिदिन जीने के लिए किंचित मात्र भी उपयोगी नहीं दिखती थी।

बालक नागराज का मन तो अपनी माता जी के साथ कार्य करने में तथा उनसे आयुर्वेद व ज्योतिष की जानकारी लेने में लगता था, तालाब में तैरना, गिल्ली–डंडा व पिट्ठूल खेलना भी अच्छा लगता था। लकड़ियां तराश कर आदमियों के चित्र भी बनाते थे। बालक नागराज को सबसे ज्यादा गाएं चराना पसंद था। गायों को चराने में बहुत श्रम तो करना नहीं पड़ता और अतिरिक्त समय भी अधिक रहता है, अतः समय बिताने के लिए बांसुरी बजाते रहते थे। सामान्यतया, आदमी गायों के पीछे चलता देखा जाता है, परन्तु गाएं बालक नागराज के पीछे चलती थीं। जब बालक नागराज किसी वृक्ष के नीचे सो जाते तो गाएं भी उनके आस–पास ही सो जाती थी।

बालक नागराज का ध्यान एक बात पर गया कि उनकी छोटी उम्र होने के बावजूद भी गाँव के अन्य जाति के बुजुर्ग उनका बड़ा सम्मान करते थे। प्रणाम करते, उनकी पूजा करते थे। कोई–कोई तो उनके सामने दंडवत् हो जाते थे। उनके मन में विचार आते, ''मैंने इन्हें क्या दे दिया है जो ये मुझे प्रणाम करते हैं।, मेरा सम्मान, पूजा करते हैं।'' इस बात का जिक्र माताजी से करते तो वह बस मुस्करा दिया करती। इस तरह इस बारे में वह हमेशा सोचते रहे परन्तु 10–11 वर्ष के होने के बाद ही इसके बारे में किसी से पूछने का निर्णय किया।

बड़े होने लगे तो बड़े भाई के साथ मिलकर दूध दुहना भी शुरू कर दिया। माताजी के साथ जंगल में जाते और औषधि योग्य वनस्पतियों की जानकारी प्राप्त करते (जो उनको आज भी याद है)। जहाँ स्कूल में कन्नड़ लिखना, पढ़ना और बोलना सीखते, घर में अंग्रेजी बोलना तथा हिंदी और संस्कृत पढ़ना, लिखना व बोलना प्रारंभ किया। परम्परानुसार, 7 वर्ष होते होते श्री सुब्रमनियम अवधानी से, जो वेदमूर्ति थे परन्तु परिवार के नहीं थे, वेदों को पढ़ना भी शुरू कर दिया था। कोई भी बच्चा स्वयं के ही घर में उपलब्ध वेदमूर्ति से वेदों का अध्ययन नहीं करता था।

उपनयन

एक दिन बालक नागराज अपने छोटे बहनोई (रूकमानाम्मा के पति जो 20 वर्ष के थे, और रूक्मानाय्या उस समय लगभग 8–9 वर्ष की थी, बालक नागराज लगभग 7–8 वर्ष के होंगे) के साथ कावेरी नदी के किनारे घूमने गए। सूर्य ग्रहण का दिन था। बहनोई का मन साधना करने को किया और आंख बंद कर ध्यान में बैठ

गए। नागराज दूर बैठकर उन्हें देखने लगे। अचानक एक प्रबल चक्रवात बहनोई की ओर आता दिखा। नागराज जल्दी से उन्हें सावधान करने के लिए दौड़े। पर चक्रवात की गति तीव्र थी, उसमें बहनोई फंसे लट्टू की तरह घूमते हुए ऊपर की ओर उठकर जमीन पर गिर गए और मर गए। यह देखकर बालक नागराज दंग रह गए। उनके कानों में शादी के दौरान बोले हुए बुजुर्गों व ज्योतिषियों के स्वर गूंजने लगे :

''बहुत अच्छा वर है, लंबी उम्र तक जीयेगा।''

''लड़की जिन्दगी भर खुश रहेगी।''

बहनोई की इस तरह अकस्मात् मृत्यु देखकर उनका ज्योतिष से आस्था समाप्त हो गयी। यह सब सोचते हुए दौड़कर घर गए और माताजी, पिताजी व भाई को घटना के बारे में बताया। उन्होंने बहनोई का दाह–संस्कार किया। बहिन बाल–विधवा हो चुकी थी। यह देखकर नागराज को दुःख हुआ तथा ज्योतिष से विश्वास उठ गया।

कुछ दिनों के बाद बालक नागराज का उपनयन संस्कार हुआ। इसमें उनको काफी उपदेश दिए गए। किसको कब छूना और नहीं छूना बताया गया। फलस्वरूप, एक दिन, जब दासप्पा नाम के एक मित्र ने, जो मछुआरे जाति से था, खेलते समय नागराज को छुआ तो उनके मन में दासप्पा के प्रति द्वेष पैदा हुआ और उसको धक्का देकर दूर कर दिया जिससे दासप्पा को बहुत अधिक चोट लग गयी और वे बेहोश हो गये। यह देखकर बालक नागराज को अच्छा नहीं लगा और जनेऊ धारण करने व उससे संबंधित छुआछूत की कोई सार्थकता उन्हें नहीं दिखाई दी। अतः उपनयन संस्कार के मात्र 20 दिन के बाद ही, जनेऊ उतारकर फेंक दिया और फिर कभी इस तरह छुआछूत का भाव उनके मन में नहीं आया।

जिस परंपरा व रीति से अपने ही मित्र के प्यार में कमी आ जाये, उसे ढोना उनको बिल्कुल स्वीकार नहीं हुआ। जब भी इस तरह की कोई घटना होती तो परिवार को व उन्हें गाँव वालों से (जिसमें बुजुर्ग भी शामिल होते थे) मिलने वाले सम्मान को लेकर मन में प्रश्न उभर आता था। अतः इस बार भी उठा।

माताजी व पिताजी से पूछने पर पता चला कि उनके परिवार में कई पीढ़ियों से लोग सन्यासी होते रहे। उनमें से कुछ लोग अपनी समाधि के लिए स्वयं गड्ढा खोदे उसमें बैठे, ऊपर से मिट्टी डालकर शरीर त्याग दिए। इन बातों से परिवार का सम्मान होता था जो नागराज को भी मिलता है। फिर प्रश्न इस तरह से उभर कर आया ''इस तरह समाधि में बैठकर और शरीर त्यागकर, उन्होंने परंपरा के लिए, लोगों के लिए क्या दे दिए'?'

इन सब विचारों के चलते बालक नागराज ने जैसे तैसे शिक्षा पूरी की जिसमें कन्नड़ को बालू (रेत) में ऊंगली के बाद लकड़ी, उसके बाद सींक, और फिर पेन से लिखना सीख लिया। गणित में जोड़ना–घटना तथा भिन्न भी सीखा। उसके बाद स्कूल जाना बंद कर दिया। परन्तु घर पर माताजी से आयुर्वेद व परिवारजनों से हिंदी, संस्कृत का लिखना पढ़ना तथा अंग्रेजी बोलने का कार्यक्रम जारी रहा। गाएं चराना, दूध दुहना और अन्य गृह कार्य भी करते रहे।

इस समय किशोर नागराज की आयु लगभग 11 वर्ष थी। उनकी माताजी से बालक नागराज की आयुर्वेद व ज्योतिष की शिक्षा मिली। अंततः एक दिन माताजी ने उन्हें श्रीविद्या की दीक्षा दी (बाद में गुरुजी से भी सहमति प्राप्त की)। आगम तंत्र की उपासना तीन प्रकार से की जा सकती है – विष्णु आगम तंत्र, शिव आगम तंत्र तथा शाक्त आगम तंत्र। शाक्त आगम तंत्र उपासना में शक्ति के तीन रूपों की पूजा व उपासना की जाती है – बाला, सुंदरी तथा राज राजेश्वरी। बाह्य न्यास तथा अंर्तन्यास विधि से शरीर के अंगों में देवताओं को बिठाया जाता है और उनकी पूजा व आराधना की जाती है। इस विधि से तीन शक्तियों का जागरण किया जाता है – क्रिया शक्ति, इच्छा शक्ति एवं ज्ञान शक्ति। श्री विद्या उपासना में किशोर नागराज 2–4 घंटे प्रतिदिन लगाते थे। इस तरह खेतों में श्रम, गाएं चराना, माताजी के साथ दवाइयाँ बनाना, सेवा तथा उपासना करने में दिन गुजरता था।

12–14 वर्ष की अवधि में संगीत के प्रति रूचि जागृत हुई। संगीत वादक यन्त्र वीणा के प्रति परिवार की सहमति थी। अग्रहार में ही दो संगीतज्ञों को जानते थे – श्री कृष्णमूर्ति बांसुरी एवं वीणा बजाते थे तथा श्री चिनप्पा गाते थे। श्री कृष्णमूर्ति से वीणा बजाना सीखना प्रारंभ कर दिया। आप को राग तोड़ी बहुत पसंद आता था।

और इसके साथ–साथ, स्वयं स्फूर्त विधि से लोहार, बढ़ई, कुम्हार, कपड़ा

बुनने आदि का कार्य सीखना भी शुरू कर दिया।

इस सबके साथ, वेद और उपनिषदों का पठन–पाठन व श्रवण भी चलता रहता था। घर, परिवार व मोहल्ला में वेद, वेदान्त तथा उपनिषदों की ही ध्वनि गूंजती रहती थी।

गुरु मिलन

गाँव में परम्परा थी कि जब भी कोई बालक युवा होने की घोषणा करता तो उसे गाँव के बाहर के मंदिर में रखा हुआ एक पत्थर उठाना होता था। उसके बाद ही वह किसी डूबते को या अग्नि में जलते हुए को बचाने के योग्य माना जाता था। ज्यादातर लोग उस पत्थर को 18 वर्ष होने के बाद में उठाते थे। परन्तु किशोर नागराज ने उसे 16 वर्ष की आयु पार करते ही उठा लिया, और युवा घोषित हो गए। परन्तु इस बात से पिता को अधिक खुशी नहीं हुई। वह उनके श्रम से तो खुश रहते थे, पर उनके क्रियाकलापों व विचारों से ज्यादातर नाखुश ही रहते थे, जबकि माताजी उनके विचारों से भी व सेवा से भी बहुत खुश रहती थीं।

पिताजी ने कई कोणों से स्थिति का जायजा लिया कि इसने स्कूल में पढ़ाई भी नहीं की और वेदों में भी विशेष निष्ठा नहीं दिखती। वेद वाक्यों में शंका ही बताते रहता है। परंपरागत रीति–रिवाजों का पालन करने में भी कोई विशेष रूचि नहीं लेता है। बहुत सोचने समझने के बाद उन्होंने युवा नागराज को सुधार हेतु उस समय के श्रृंगेरी के शंकराचार्य श्री चंद्रशेखर भारती जी (परिवार जिन्हें गुरु जी मानता रहा) से मिलाने का निर्णय लिया।

युवा नागराज गुरुजी से जब पहली बार मिले तो बहुत रोना आया। गुरुजी उस समय लगभग 42 वर्ष के रहे होंगे। पिताजी ने युवा नागराज का सर पकड़कर गुरुजी के चरणों में पटक दिया और बोले, यह वेदांत और रीति–रिवाज को मानता नहीं बस कुतर्क करता रहता है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कोई विशेष बात नहीं दिखती थी, परन्तु युवा नागराज के आत्मसम्मान को चोट पहुँची और बस रोना आया और रो दिए। घर आकर भी रोते रहे। फिर बीमार हो गए, आंत का बुखार हो गया जो लगभग 42 दिन तक चला। माताजी ने उपचार किया और खूब सेवा की जिससे ठीक हो गए। बुखार उन्हें जिन्दगी में एक नया मोड़

देकर चला गया था, यह युवा नागराज भी नहीं जानते थे।

ठीक होने के कुछ दिन बाद ही युवा नागराज ने अपने में कई परिवर्तन महसूस किये। उन्हें लगा कि वेदपाठ सही से होने लगा, श्लोक याद होने लगे, और श्लोक समझ भी आने लगे थे। उन्हें श्लोकों के अर्थ का अनुमान होने लगा तथा अर्थ प्रतीत होने लगा। इससे अब नई अड़चन शुरू हुई। श्लोकों के अंतर्विरोध भी दिखने लगे। 'ब्रह्म सत्यम्, जगत मिथ्या' और 'ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति' एवं 'ब्रह्म ही बंधन व मोक्ष का कारण होना' की बात से युवा नागराज परेशान होने लगे। सबसे प्रश्न करने लगे कि ब्रह्म ही बंधन और मोक्ष का कारण कैसे? परिवार वाले इसे ''वितंडावाद'' कहने लगे और वह भी परेशान होने लगे। परिवार ने श्रेष्ठतम वैदिक परंपरा का सम्मान प्राप्त किया हुआ था। युवा नागराज जानते थे कि परिवार के सम्मान के आधार पर ही गाँव के बुजुर्ग भी उनका सम्मान करते थे। वह यह भी जिम्मेदारी समझते थे कि परिवार ने जो सम्मान और प्रतिष्ठा बनाया था, उसे बर्बाद करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। परन्तु, अपने प्रश्नों व जिज्ञासाओं के उत्तर पाने की तीव्र उत्कंठा थी। इसी असमंजस की मानसिकता व ''श्रम, सेवा, वेद अध्ययन एवं उपासना' वाली दिनचर्या में समय बीत रहा था।

इस बीच, बड़े भाई अनंत नारायण शर्मा की शादी हो गयी और उन्होंने अपने तीन सालों के साथ मिलकर सैय्याजी राव रोड, मैसूर में सिलाई का एक कारखाना स्थापित कर दिया था। युवा नागराज ने भी वहाँ दो वर्ष रहकर सिलाई सीख ली थी।

विवाह

ऐसी परिस्थितियों में जैसा बहुधा होता है और युवा नागराज की आयु भी हो गयी थी, माता–पिता ने उनकी शादी की बात चलायी। अग्रहार से 60–70 किलोमीटर दूर श्रवणवेळगोला में जान–पहचान वाले श्री मजैया और उनका परिवार रहता था। श्री मजैया संस्कृत के विद्वान एवं अध्यापन कार्य करते थे। उनकी कन्या सुश्री नागरत्ना का, जो उस समय लगभग 15–16 वर्ष की थी, रिश्ता आया हुआ था। वर्तमान में मानसिक स्थिति को देखते हुए युवा नागराज को शादी करने की आवश्यकता बिल्कुल भी नहीं दिखती थी। उन्होंने शादी का विरोध किया। परिवारजनों से ज्यादा दबाव आया तो गुरुजी से मिलने गए और कहा, ''मुझे शादी नहीं करनी

है, मुझे ज्ञान पाना है, आप इस शादी को रूकवा दीजिये,'' गुरुजी ने कहा, 'ठीक है, एक साल के लिए रूक सकती है। इस बीच आप काशी जाकर साधना कीजिये।' युवा नागराज को तो जैसे खजाना मिल गया हो। श्रृंगेरी से ही घर एक पत्र भेज दिए जिसमें गुरुजी की आज्ञा का वर्णन था और वहीं से ही सीधे काशी रवाना हो गए।

इस तरह बीस वर्ष की आयु में, युवा नागराज काशी पहुँच गये। वहाँ क्षेमेश्वर घाट पर केदार गली में रहने लगे। युवा नागराज ने पाया कि काशी में अनेक अन्नक्षेत्र हैं जहाँ अनेक साधु सन्यासी तीनों समय का भोजन करते तथा अपने–अपने ढंग से साधना करते थे। परन्तु युवा नागराज को अन्नक्षेत्र में भोजन करना स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने श्रम पूर्वक उत्पादन कर अपना भरण–पोषण करने का निर्णय लिया। वह सिलाई का कार्य करने लगे। उससे प्रतिदिन 4–6 रुपये कमाई हो जाती तथा उसमें से लगभग 1 रुपये में पास के होटल में शाकाहारी भोजन खाते और बचा हुआ पैसा लोगों में बांट देते थे। इस तरह प्रतिदिन शून्य की स्थिति में पहुँच जाते थे। ज्यादातर समय शास्त्रों के पठन, भजन और उपासना में लगाते थे। श्लोकों के अर्थ जो विचारों में आते थे, उसे साक्षात्कार मानने लगे तथा एक समय ऐसा लगने लगा कि उन्हें शिवजी के दर्शन होने लगे। शिवजी को देखने का भ्रम लगभग 30 वर्ष पश्चात् साधना के दौरान ही दूर हुआ। इस तरह काशी में एक वर्ष बिताकर वापस अग्रहार चले आये।

माता–पिता तो इन्तजार कर ही रहे थे, कन्या पक्ष के लोग भी नागरत्ना से युवा नागराज के विवाह की आशा में राह देखते थे। नागराज के वापस आते ही सबने मिलकर उनका विवाह 22वर्ष की आयु में सम्पन्न कर दिया। विवाह उत्सव 7 दिन तक चला।

युवा नागराज की माताजी व उनकी पत्नी की आपस में अच्छी बनती थी अतः नागराज ने अपनी माताजी की बात तथा पत्नी की सलाह मानकर जिंदगी जीना शुरू किया। पति–पत्नी दोनों ही अपने माताजी, बड़े भाई व गुरुजी की आज्ञापालन करते थे। इससे उनमें आपस में कभी भी कोई मामले को लेकर वाद–विवाद नहीं हुआ।

उन्हीं दिनों की एक घटना है कि बाल–विधवा बहिन के ससुर किसी कार्यवश अग्रहार पधारे हुए थे। उन्होंने एक चर्चा के दौरान युवा नागराज से आग्रह किया कि उनकी बात का उत्तर नागराज लिखित में एक पत्र के द्वारा भेजें। पत्र लिखने की बात सुनकर युवा नागराज की बहिन ने आक्षेप किया। इसकी छाती फाड़ने से भी 2 अक्षर नहीं निकल पायेंगे। आक्षेप से कुछ पीड़ित होकर नागराज ने होसपेट के पास पंपापति (हम्पी) में पत्थर की एक गुफा में एकांतवास किया। बिना कुछ खाएं पीए केवल नदी का पानी पीते थे, वहाँ लगभग 45 दिन रहे थे। वहाँ रहकर छंदों के मर्म को समझने एवं छंदबद्ध करने की कला आ गयी और कविता बोलने तथा लिखने लगे। तत्पश्चात् बहिन के ससुर को एक पत्र कविता की शैली में लिखा जिसका उत्तर फिर नहीं आया। इसका प्रभाव यह हुआ कि कविता और लेख लिखने का कार्यक्रम चल निकला। अनेक आयोजनों व सभाओं में कविता पाठन व गायन तथा अनेक पत्रिकाओं में लेखन करने लगे। इन कविताओं को पढ़–सुनकर लोग गद्–गद् होने लगे। इसी क्रम में एक बार देश की स्वतंत्रता से जुड़ी एक सभा में कविता करने के बाद परिचितों के साथ बैठे हुए थे। उस समय की अंग्रेजी सरकार सभा में शामिल लोगों को देशद्रोही मानती थी। पुलिस ने सभा में बैठे लोगों पर गोलियाँ चला दी। नागराज के बाएं और दायें बैठे दोनों लोग गोली खाकर मारे गये। नागराज संयोग वश बच गए और किसी तरह से मरे हुए परिचितों के मृत शरीरों को उनके घर पहुँचा कर अपने घर गए। कविता पाठ व लेखन का क्रम लगभग 2 वर्ष तक चला। तत्पश्चात् उसकी निरर्थकता को पहचानते हुए ''कविता'' को तिलांजलि दे दिए।

इस बीच, विवाह के लगभग 2 साल बाद पहली संतान हरि (नरहरि) का जन्म हुआ। पत्नी के माता–पिता (नागराजजी के ससुर) की इच्छानुसार, हरि को उनके पास भेज दिया।

इस अवधि में, मद्रास प्रेसीडेंसी में स्थित विजयवाड़ा में जाकर उत्पादन से संबंधित कार्यभार संभाला तथा उससे कुछ रुपये अर्जित किये। परन्तु, इस कार्य में भी उनका बहुत मन नहीं लगा। रह–रहकर वही प्रश्न अंतःकारण में गूंजते। यदि ब्रह्म (सत्य) से ही जगत की उत्पत्ति हुई है तो यह सब (जगत) मिथ्या (असत्य) कैसे है? ब्रह्म ही बंधन और मोक्ष का कारण कैसे है? यदि सब कुछ ब्रह्म की ही लीला है तो मेरे होने या न होने का क्या अर्थ है? मेरे स्वत्व का मेरे कर्म करने का क्या

अर्थ है? आखिर यह सब जीवन व्यापार किस लिए? अतः विजयवाड़ा का कार्य मित्र को सौंप कर वापिस अपने गाँव अग्रहार आ गए और पारिवारिक जीवन जीते हुए अपनी शंकाओं के समाधान की प्राप्ति को प्राथमिकता देते हुए हर संभव प्रयास में जुटने का निर्णय लिया।

आर या पार

ब्रह्म, सत्य, जगत, असत्य, मिथ्या, बंधन, मोक्ष, समाधि, सन्यास इत्यादि बिंदुओं को लेकर अनेकों अनेक प्रश्न युवा नागराज के मन में एक साथ उठते थे किन्तु शंका निवारण का कार्यक्रम बचपन में उठे प्रश्न को लेकर ही आरंभ किया। परिवार वालों से पूछा, ''हमें परंपरा व पूर्वजों के कारण जो सम्मान मिलता है, जो वे सन्यासी हो गए और कुछ समाधि के लिए स्वयं ही गड्ढा खोदकर अपने ऊपर मिट्टी डालकर मर गए, वे हमको क्या दे गए?''

परिवार वालों को इसका उत्तर देने में काफी परेशानी होने लगी। अन्ततोगत्वा उत्तर मिला : ''शास्त्रों में 'सन्यास' के बारे में लिखा है कि उससे कल्याण होता है।''

युवा नागराज ने तो सत्य की तह तक जाने की ठान ली थी, वह आगे बोले, ''उनके 'सन्यास' से यदि कुछ कल्याण हुआ तो उसका क्या प्रमाण है?''

''तुम वेदांत को ठीक से समझे नहीं हो।'' आक्षेप आया।

''वेदांत को ठीक से समझने के लिए क्या करना होगा?''

शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करना पड़ता है।

यह सुनकर युवा नागराज वेदों के विधिवत् अध्ययन के लिए तैयार हो गए। उनके मामाजी ने श्रृंगेरी के शंकराचार्य सहित अनेक विद्वानों को अध्ययन कराया था। अतः उन्हीं से शास्त्रों को समझने का निर्णय लिया। घर छोड़कर मामाजी के साथ रहकर वेदों का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। इस तरह लगभग पांच वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् एक दिन मामाजी ने कहा कि उनका अध्ययन पूर्ण हो गया। उनके वेद उच्चारण को सुनने के लिए लोग उमड़–उमड़ कर आते थे। युवा नागराज वेदों के श्लोंको को तो कंठस्थ कर चुके थे परन्तु उन्हें स्वयं के प्रश्नों का उत्तर मिल गया था ऐसा वह नहीं कह सकते थे। अतः अपनी माताजी की उपस्थिति

में उन्होंने मामाजी से संवाद किया :

''बंधन और मोक्ष क्या है?''

''हम मायावश बंधन में रहते हैं और जब आत्मा ब्रह्म में विलय हो जाती है उसे मोक्ष कहते हैं।''

''आत्मा कहां से आया?''

''ब्रह्म स्वयं जीवों के हृदय में आत्मा के रूप में निवास करता है।''

''जब जीव समस्त प्रयास मुक्त होने के लिए अर्थात् आवागमन से मुक्त होने के लिए ही करता है तथा उसके लिए आत्मा को ब्रह्म में विलय होना ही है तब ब्रह्म को आत्मा के रूप में जीव के हृदय में बैठने की क्या आवश्यकता है?''

''ब्रह्म ही कैसे आत्मा बनकर जीव के हृदय में बैठता है फिर क्यों स्वयं में विलय होकर मोक्ष चाहता है?''

अब मामाजी तथा अन्य उपस्थित विद्वान एक दूसरे का मुख ताकने लगे थे, बगले झांकने लगे थे। मामाजी अपने प्रिय भांजे को इतना पढ़ाकर भी उसकी जिज्ञासाओं की तृप्ति न कर पाने के कारण परेशान होने लगे थे। युवा नागराज का उद्देश्य कोई वाद–विवाद करना, शास्त्रार्थ जीतना अथवा किसी को तनिक सा भी दुःख पहुँचाने का नहीं था। वह तो बस अपनी शंकाओं का समाधान पूर्ण उत्तर ईमानदारी से चाहते थे। उन्होंने अपना प्रश्न जारी रखा।

''मैंने वेदांत (अद्वैत मोक्ष) में पढ़ा है कि ब्रह्म ही बंधन व मोक्ष का कारण है। मुझे समझाइये कि यह ब्रह्म ही बंधन और मोक्ष का कारण कैसे है?'' उपस्थित विद्वानों से कोई निश्चित उत्तर नहीं मिला, बल्कि विद्वान लोग उन वाक्यों को दोहराने लगे थे जो उन्होंने शास्त्रों में पढ़ रखे थे। युवा नागराज के विद्वत प्रश्नों का कोई सटीक उत्तर उन्हें नहीं दिखता था फिर भी साहस जुटाकर उत्तर दिया :

''यह ब्रह्म ज्ञान से समझ में आता है।''

''ब्रह्म ज्ञान क्या है?''

''ब्रह्म अव्यक्त और अनिर्वचनीय है। यह गुड़ खाया हुआ गूंगा जैसा है।''

''बोल या समझ नहीं सकते फिर ऐसे 'ब्रह्म ज्ञान' का क्या मतलब? और फिर बोलने वाला भी तो गुड़ खाता है।''

''यह जगत ब्रह्म लीला है।'' उपस्थित विद्वानों ने अंतिम तर्क दिया।

अब नागराज चर्चा के अंजाम तक जाना ही चाहते थे, अब रूकने का कोई सवाल ही नहीं था। व्यंगात्मक अंदाज में बोले : ''देखिये संसार में जो लोग दारू पीते हैं, वे बढ़िया लीला करते हैं, जो पागल हो जाते हैं और ज्यादा बढ़िया लीला कर लेते हैं। तो क्या ब्रह्म को 'पागल' या 'पियक्कड़' माना जाए?''

यहाँ पर परिवारवालों ने हथियार डाल दिए और विद्वानों के बीच में इस तरह की भाषा व तर्क करने के पश्चात् भी अपने मामाजी की सामाजिक प्रतिष्ठा के रहते किसी भी प्रकार की संभावित शारीरिक व मानसिक पीड़ा से बच गए।

परन्तु, युवा नागराज के अंतःकरण में निरंतर विचार चलते रहे : ''ज्ञान रूपी सत्य को परम पवित्र बताते हुए भी इसके छुपे रहने का क्या कारण हो सकता है? इस प्रकार ज्ञान के आधार पर क्या निर्णय किया जाए? मेरा परिवार वैदिक परंपरा को समर्पित है और अवश्य ही उनकी विद्या प्रमाणित हुई है, परन्तु वस्तु का प्रमाण तो नहीं दिखता। 'सन्यास' की इतनी अधिक महिमा के पीछे शास्त्र ही तो है। सभी शास्त्र, वेदांत व उपनिषद् मिलकर, किसी सच्चाई की एक सूचना ही मालूम होते हैं। ज्ञान का प्रमाण या साक्ष्य तो पुस्तक को नहीं स्वयं मानव ही होना चाहिए।'' ईश्वरवादी या अध्यात्मवादी परंपरा में आस्था होते हुए भी नागराज के मन में ये सब बड़े प्रश्नचिन्ह बन गए थे। उनका उद्देश्य शास्त्रों अथवा परंपरा को गलत ठहराना नहीं था तथा परंपरा और परिवार के सम्मान का भी ध्यान निरंतर बना रहता था। अतः कभी–कभी सोचते : ''क्या मेरा सोचना उचित नहीं है? यदि उचित है तो उत्तर क्यों नहीं मिल रहा है?''

तत्कालीन वेद मूर्तियों व उपनिषद–वेदांत के संबंध में ज्ञान चर्चा करने वालों के सान्निध्य में यथावत् जिज्ञासाएं प्रस्तुत किये। वेदमूर्ति विद्वानों को एकत्रित करना मेढकों को एकत्रित करने जैसा लगा। किन्तु मामाजी की ही प्रतिष्ठा के कारण वह एकत्रित हो पाए। उन विद्वानों से चर्चा करने से तथा उनके किसी भी उत्तर से

समाधान तो नहीं मिला, संतुष्टि तो नहीं मिली, परन्तु एक सुझाव अवश्य आया :

''इसको समझने के लिए तुमको स्वयं अनुभव करना पड़ेगा।''

''अनुभव कैसे होता है?''

''समाधि में अनुभव होता है।''

''किस बात का अनुभव होता है?''

''ज्ञान का, ब्रह्म का, अज्ञात ज्ञात होता है।''

अन्य कई महापुरुषों से भी कुछ इसी तरह का सुझाव आया कि समाधि में ज्ञान होता है। सभी मुद्दों पर विचार करने पर युवा नागराज ने अपने अंतःकरण में समाधि के लिए आवश्यकता को महसूस किया और अपने मन को तैयार किया कि उन्हें यह शरीर यात्रा समाधि के लिए अर्पित करनी ही होगी। उन्हें स्वयं के जीने के लिए उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर जानना अत्यंत आवश्यक प्रतीत हो रहा था यथार्थ ज्ञान के प्रति तीव्र जिज्ञासा हो गयी थी। इन सब अध्यात्मिक प्रश्नों के साथ–साथ, राष्ट्र में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का विचार कर भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी। स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान निर्माण हुआ जिसमें राष्ट्रीय जीवन को लेकर मूल प्रश्न जैसे राष्ट्र किसे कहें, राष्ट्रीयता का स्वरूप क्या हो, राष्ट्रीय–चरित्र कैसा हो, इन सबका न तो कोई ठोस आधार और न ही कोई व्याख्या दिखाई पड़ती थी। फिर भी जन प्रतिनिधि के पात्र होने को स्वीकार किया गया जिसका आधार वोट एवं धन को माना गया। संविधान में एक ओर तो धर्म निरपेक्षता की बात कही गयी परन्तु साथ में ही अनेक जाति, संप्रदाय एवं समुदायों का उल्लेख किया गया। एक ओर समानता की बात तो दूसरी ओर आरक्षण का प्रावधान। इन सब विसंगतियों से मुक्ति व स्वयं की जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिए समाधि की तैयारी करने लगे।

उस समय उनकी उम्र 27–28 वर्ष की रही होगी। जिज्ञासु नागराज को ज्ञात था कि यदि परंपरा को छोड़कर, अपने मन का कुछ करना है तो शास्त्रों में विद्वत सन्यास के प्रावधान का वर्णन है। विद्वत सन्यास में जाने के लिए अपनी पत्नी, माताजी व गुरुजी की अनुमति चाहिए। अस्वीकृति की आशंका तो थी पर अब अनुमति चाहिए, क्या किया जाए?

सर्वप्रथम अपनी धर्मपत्नी से गोष्ठी की, अपना विचार व्यक्त किया तथा प्रस्ताव रखा : ''समाधि के लिए एकांतवास की आवश्यकता है। फल, कंद मूल खाने की जगह जाना होगा। एकांतवास व कंद मूलाहर आपके लिए घोर कष्टदायी होगा। आपकी आजीविका के लिए पर्याप्त धन है। आपके माता–पिता वृद्ध हो चुके हैं, आपका उन्हीं के साथ रहना उचित होगा।''

इसके प्रतिवाद में पत्नी बोली : ''मेरे पिताजी विवाह के समय मुझसे यह प्रतिज्ञा कराएं हैं कि मैं हर परिस्थिति में आपके साथ रहूं तथा आपकी सेवा करूं। क्या आपकी बात मानूं या पिताजी की बात मानूं?''

यह सुनकर नागराज के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं रहा। बस पुनः निवेदन किया : ''हम और आप किसी घने जंगल में जायेंगे तो वहाँ लकड़ी का घोघट या कोई गुफा या कोई जीर्ण–शीर्ण खंडहर रहने को मिल सकता है। वहाँ रहते हुए मैं कंदमूल लेने चला जाऊँगा और मुझे कोई क्रूर बाघ खा जायेगा तब तुम क्या करोगी?''

पत्नी बोली, ''आपका गणित ही गलत है। यदि आप जंगल में रहोगे तो मैं भी जंगल में ही रहूँगी। जंगल में रहते समय किसे बाघ या जानवर पहले खायेगा यह कैसे कह सकते हैं? जानवर किसी भी शरीर को आहार बना सकता है। यदि किसी एक का शरीर आहार बन सकता है तो दूसरा भी वहीं बैठा होगा, वह भी जानवर का आहार बन ही जायेगा। इसके लिए इतनी कविता की क्या आवश्यकता है?''

इस उत्तर को पाकर नागराज अवाक् रह गए।

धर्मपत्नी से वार्तालाप के पश्चात् नागराज ने अपनी पूज्यनीया माताजी से समाधि हेतु जंगल में जाने के लिए अनुनय–विनय पूर्वक प्रार्थना की। माताजी उनके लिए पहले से ही गुरुतुल्य थी, जैसा पहले बताया जा चुका है, उन्हीं से नागराज ने 'श्रीविद्या उपासना' की दीक्षा, आयुर्वेद व ज्योतिष की शिक्षा ग्रहण किये थे। माताजी से आज्ञा मांगी तो वे भूरि–भूरि आशीर्वाद के साथ बोली, ''तुम स्व–विवेक से जो भी निर्णय लोगे उससे अच्छा तुम्हारे लिए निर्णय लेने वाला इस धरती पर और कोई नहीं है। मेरा आशीर्वाद है कि तुम जो प्रयत्न करोगे वह सदा–सदा के

लिए शुभ रहेगा, तुम उसमें सफल हो जाओगे।''

माताजी से आशीर्वाद लेने के पश्चात् गुरुजी से अनुमति लेने का विचार किया। श्रृंगेरी पहुँच कर गुरुजी (श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्री चंद्रशेखर भारती) के सामने प्रस्तुत हुए तो देखा कि गुरुजी नेत्र मूंद कर ध्यान मग्न थे। बहुत इंतजार करने के पश्चात् वापस रात्रि निवास स्थान लौट गए। अगले दिन भी गुरुजी को उसी ध्यान मग्न मुद्रा में पाया तथा इन्तजार के पश्चात् फिर रात्रि निवास के लिए लौट गए। फिर तीसरे दिन गुरुजी ने नेत्र खोले और जिज्ञासु नागराज ने गुरुजी से प्रार्थना की तो उन्होंने आशीर्वचन दिया, ''तुम्हारा संकल्प ठीक है। तुम सफल हो जाओगे। नर्मदा किनारे भजन (साधना) करो।'' जिज्ञासु नागराज की खुशी का ठिकाना न था। तुरंत गुरुजी को प्रणाम कर लौट पड़े। इस तरह गुरुजी का आशीर्वाद भी मिल गया तथा साधना करने का स्थल भी निश्चित हो गया। परन्तु, कुछ देर बाद ही ध्यान में आया कि साधना करने का स्थल कहाँ निश्चित हुआ? नर्मदा का किनारा तो उसके उद्‌गम स्थल से लेकर सागर में समाने तक लगभग 2000 किलोमीटर है। फिर कहाँ साधना की जाये? इसका स्पष्टीकरण गुरुजी से लेना उचित मालूम नहीं हुआ (वैसे भी गुरुजी तो ध्यानमग्न हो गए होंगे!) तथा स्वविवेक से नर्मदा उद्‌गम स्थल अमरकंटक जाकर साधना करने का निश्चय किया।

माताजी व गुरुजी की आज्ञा के पश्चात्, जिज्ञासु नागराज ने अपने पूज्य पिताजी के सम्मुख उपरोक्त प्रस्ताव रखा। पिताजी बोले, ''तुम वेद और अध्यात्म मानते हो तो हमारे जीवित रहने तक तुम्हारा जप–तप, यज्ञ व समाधि हमारी सेवा ही है। वेद–विचार को ध्यान में रखते हुए इसका पालन करना ही तुम्हारा धर्म है।''

पिताजी की आज्ञा का तो पालन करना ही था, अतः जिज्ञासु नागराज ने उचित समय पर समाधि के लिए जाने का निश्चय किया। इस बीच ससुर से भी परामर्श लेना उचित समझा, वे बोले, ''तुम 60 वर्ष की आयु के बाद वानप्रस्थ जाना।''

''आपकी आयु कितनी हो चुकी है,''

वे बोले, ''62 वर्ष।''

जिज्ञासु नागराज ने धीरे से पूछ ही लिया, ''फिर आप यहाँ क्यों दिख रहे

हैं?'' यह सुनकर वह निरूत्तर हो गए।

सभी के परामर्श के फलस्वरूप समाधि के लिए अमरकंटक जाने की योजना प्रारंभ किया। पिताजी के वचनों को स्मरण रखते हुए, अपने सभी क्रियाकलापों, लेन–देन आदि सबको पूरा करने में लग गए। योजना के अंतर्गत साधना काल में पत्नी व बच्चों के भरण–पोषण हेतु निजी संपत्ति को बेचकर धन एकत्रित किया। एक मित्र, जिसकी कोई संतान नहीं थी, लौटने का वायदा करके, सारा धन लेकर गया किन्तु फिर वापस नहीं आया। अमरकंटक जाने की योजना बर्बाद होते देख नागराज चिंतित होने लगे। पति को चिंतित देखकर, पत्नी ने कहा, ''रुपये–पैसे की इतनी ही चिंता थी तो संपत्ति को बेचा ही क्यों? साधना करने चलना है तो चलिये मैं आपके साथ हूँ, मैं भी और बच्चे भी कंद–मूल खाकर निर्वाह कर लेंगे।'' यह सुनकर युवा नागराज को बहुत संबल मिला।

कुछ ही दिनों में, लगभग सन् 1947 के अंत में, योग संयोग से माताजी का देहांत हो गया। उसके लगभग एक महीने बाद पिताजी का भी देहांत हो गया। परिवार की परंपरा के अनुसार मरणोपरांत किये जाने वाले कर्मों की शिष्टता का निर्वाह एक वर्ष तक किया।

अन्ततोगत्वा, नागराज अपनी पत्नी व एक पुत्री, जो लगभग एक वर्ष की थी, के साथ दिसंबर के अंतिम दिनों में अग्रहार को छोड़कर, मद्रास (आज चेन्नई)–विशाखपट्टनम–बिलासपुर–पेंड्रा रोड मार्ग से अमरकंटक के लिए प्रस्थान कर दिए। इसके बाद, इस शरीर यात्रा में फिर एक या दो बार ही अग्रहार आना हुआ।

अमरकंटक

भारतवर्ष में तीर्थ स्थानों में जाकर कुछ पुण्य कमाने की परंपरा बहुत पुरानी है। मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिला में मैकल पर्वत राशि में स्थित अमरकंटक, केदारनाथ जैसा ही पर कुछ कम प्रचलित तीर्थ स्थान है। यहीं से ही नर्मदा नदी का उद्गम होता है जो भारत की सदाबहार नदियों में एक है। जिस तरह उत्तर भारत में गंगा नदी की पूजा होती है, उसी तरह मध्य भारत में नर्मदा नदी को सम्मान दिया जाता है।

देश के अन्य तीर्थ स्थानों की तरह आज अमरकंटक भी एक पर्यटन का स्थान होता जा रहा है। लगभग 10000 की जनसंख्या वाले, तथा जंगल में पहाड़ियों से घिरे इस स्थान में यात्रियों के ठहरने के लिए उत्तम होटल है तथा उनके मन को लुभाने के लिए सरकार द्वारा कई प्राकृतिक स्थलों का विकास किया जा रहा है। अमरकंटक पहुँचने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है। पेंड्रा रोड से जीप अथवा कार से पहुँचा जा सकता है। जबकि जबलपुर, शहडोल की ओर से बस द्वारा भी जा सकते हैं। लाखों पर्यटक हर वर्ष नर्मदा उद्‌गम में स्नान के लिए आते हैं।

परन्तु आज से लगभग 65 वर्ष पहले अमरकंटक एक छोटा सा गाँव था जिसकी जनसंख्या लगभग 150 थी। उस समय अमरकंटक पहुँचने के लिए आधुनिक आवागमन के साधन नहीं थे। पेंड्रा रोड से हर वस्तु घोड़े से आती थी। युवा नागराज अपनी पत्नी के साथ बिटिया को लेकर एवं साथ के सामान को घोड़े पर रखकर पेंड्रा रोड स्टेशन से लगभग 30–35 किलोमीटर बाघ युक्त घने जंगल के बीच पगडण्डी से पैदल चलकर 31 दिसंबर 1949 की रात्रि के 8 बजे अमरकंटक पहुँचे। यहाँ एक धर्मशाला में, जिसका नाम रामबाई धर्मशाला था, रात्रि विश्राम किये। 1 जनवरी 1950 के सूर्य दर्शन हुए। उन दिनों अमरकंटक में बहुत ठंड पड़ती थी। यहाँ की धरती, झाड़, झाड़ियाँ सफेद चादर ओढ़ी हुई सी लगती थी। प्रातः ही नर्मदा मंदिर गए और नर्मदा कुंड में स्नान किया। कुछ राहत सी तो महसूस हुई परन्तु साथ ही आगे की अपने लक्ष्य के लिए यात्रा का भी विचार आया।

यहाँ आते ही लोगों ने उन्हें पहले 'मद्रासी साधु' और फिर उनके व्यवहार व कार्यकलाप को देखकर 'महाराज' कहकर बुलाना आरंभ कर दिया था। महाराज नागराज सोचने लगे, ''मैं अमरकंटक को निर्जन वन मानकर आया किन्तु यहाँ भी कुछ लोग निवास कर रहे हैं। क्या इससे अधिक निर्जन वन की ओर जाना होगा या साधना के लिए यहीं रहना होगा।''

इन विचारों के साथ यहाँ के लोगों का रहन–सहन, बातचीत व सोच–विचार की ओर ध्यान देना शुरू किया। धीरे–धीरे पता चला कि सर्वाधिक प्रौढ़ व बुजुर्ग लोग सबेरे नर्मदा में स्नान करते थे। तत्पश्चात् घर जाकर खाने–पीने के बाद बीड़ी, सिगरेट और तम्बाकू आदि का सेवन करते तथा ताश और चौपड़ खेलते रहते थे।

कुछ ऐसे भी लोग थे जो गांजा व भांग का भी सेवन करते थे। यह महाराज नागराज के लिए काफी अजीबो–गरीब/विचित्र था। मन में विचार आया–

''ऐसे बुजुर्गों के साथ बैठता हूँ तो ये मुझे भी यही सब करने को कहेंगे। यदि इन सब चीजों के लिए मना करता हूँ तो मैं इनके लिए कुजात हो जाता हूँ और यदि यही सब करता हूँ तो समझो साधना तो हवा हो गया। अब क्या किया जाए? यहाँ रहा जाए या यहाँ से भागा जाए।''

30 वर्षीय महाराज नागराज ने स्वयं को गंभीर दुविधा में पाया, एक तरफ खाई तो दूसरी ओर कुँआ। इस मानसिक उथल–पुथल के साथ स्थानीय आदिवासियों के साथ एक महीने तक घूमते रहे। जंगल में होने वाली बहुत सारी जड़ी–बूटियाँ, कंद–मूल व पत्तियाँ उनके पहचानने में आई। जो नहीं पहचानते थे, उन्हें वहाँ के वनवासियों के साथ बातचीत से समझते रहे। उन दिनों नर्मदा किनारे बहुत ब्राम्ही होती थी जिसका गुण वर्णन आयुर्वेद में पढ़ा था। इस विधि से महाराज नागराज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमरकंटक में कंदमूल खाकर जीवित तो रहा जा सकता है, परन्तु लागों के साथ कैसे रहें ?

हमेशा की तरह, उन्होंने इस संकट को भी धर्मपत्नी के सामने रखा। पत्नी ने सुझाया, ''क्यों परेशान होते हो, उन लोगों को अपना कार्यक्रम करने दो, उनको अपना जीवन जीने दो, आप अपना कार्य करो। तुम सवेरे से शाम तक साधना करो। तुम्हारे पास कोई आयेगा नहीं, तुम किसी के पास जाना नहीं।'' यह सुनकर महाराज नागराज प्रसन्न हुए।

अमरकंटक के निवासियों के साथ तालमेल हुआ तो एक नया संकट आ खड़ा हुआ। सन् 1950 में पक्की सड़क, आज की तरह मोबाइल फोन और दूरदर्शन की सुविधा न होते हुए भी यह बात दूर–दूर तक फैल चुकी थी कि एक 'मद्रासी साधु' गृहस्थ होते हुए भी समाधि प्राप्त करने की हिम्मत कर रहे हैं। उन दिनों अमरकंटक गंभीर साधना स्थल के लिए जाना जाता था तथा अनेक साधु व साधक इस अस्तित्व के मर्म को समझने के प्रयास में लगे रहते थे। कुछ ने तो इस बात को उपहास की तरह लिया और कुछ ने अहंकार पर चोट समझा की जो उपलब्धि उन्हें संसार के सुख–सुविधाएं त्याग कर भी नहीं हुई वह गृहस्थ का सुख–सुविधा भोगते हुए कोई इसकी कल्पना कैसे कर सकता है। यह मानकर कि कहीं किसी ने उन्हें

भटका तो नहीं दिया और यह समझाने के लिए कि वह अपना समय बर्बाद न करे, एक साधु हल्द्वानी से चलकर अमरकंटक महाराज नागराज से मिलने आये और कहा, ''देखिये, इस तरह से स्वयं को, धर्मपत्नी को और छोटे बच्चों को कष्ट देने से कोई उपलब्धि नहीं होने वाली है। शास्त्रों में यह स्पष्ट वर्णन है कि गृहस्थ व्यक्ति को समाधि प्राप्त हो ही नहीं सकती तो फिर इस तरह जीवन नष्ट करने का क्या औचित्य है?'' महाराज नागराज ने विनम्रता से निवेदन किया, ''मैंने इस जीवन को अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर पाने में लगाने का निर्णय लिया है। जिज्ञासाओं का उत्तर पाए बिना मेरे जीने का मुझे कोई औचित्य ही नहीं दिखता है, मेरे इस संकल्प में मेरी धर्मपत्नी और बच्चे साथ हैं।''

साधु बोले, ''किन्तु ऐसे असफल प्रयास को आरंभ करने की ही क्या आवश्यकता है?'' महाराज नागराज ने फिर विश्वास भरे स्वर में कहा, ''मुझे विद्वानों व मेरे गुरुजनों से आश्वासन मिला है कि समाधि में ही मुझे ज्ञान प्राप्त होगा, फलस्वरूप मेरे प्रश्नों का भी उत्तर प्राप्त होगा अतः समाधि के लिए प्रयास करने के अलावा मेरे पास कोई अन्य मार्ग नहीं है। अब चाहे इस प्रयास में इस जीवन की ही आहूति क्यों न देनी पड़े।'' यह सुनकर और उनकी दृढ़ निष्ठा देखकर साधु लौट गये।

साधना

इस प्रकार सारी बातें सोच विचारकर, जाँच–परख कर, स्व–विवेक पूर्वक निर्णय लिया कि आरंभिक स्थिति में सवेरे 6 बजे से शाम 6 बजे तक साधना करेंगे। अब परिवार और स्वयं का रहना, गाँव वालों की स्वीकृति से, रामबाई धर्मशाला में हुआ तथा ध्यान स्थली पास में ही एक पुराना मकान था जिसे 'काठबंगला' कहते थे।

साधना का प्रथम दिवस था। देश भर में शिवरात्रि का त्यौहार मनाया जा रहा था। जैसे ही साधना प्रारंभ किया, वैसे ही सामने के दरवाजे में 6–7 फीट की दूरी पर एक सफेद रंग का सांप दिखाई दिया। वह लगभग डेढ़ फीट अंदर आया, फन फैलाकर, सर उठाकर यथावत् लगभग 15–20 मिनट बैठा रहा और फिर दरवाजे से बाहर निकल गया। महाराज नागराज ने महसूस किया कि कमरा अनेक प्रकार की सुगंध से भर गया था। इसे उन्होंने मात्र एक शुभ संकेत मानकर साधना

को निरंतर बनाये रखा। किसी भी प्रकार के चमत्कार को तो पहले ही तिलांजलि दे चुके थे। इस बार भी एक क्षण के लिए भी ऐसा कोई विचार उनके मन में नहीं आया।

इस प्राकर माताजी द्वारा प्रदान की हुई तथा गुरुजी द्वारा समर्थित की हुई श्रीविद्या उपासना विधि से साधना का क्रम निरंतर चलता रहा। कालांतर में, यहाँ के सभी लोगों ने उन्हें अपने परिवार का मान लिया था। तो भी, वह जब कंदमूल खाते और पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लोगों को पैसा नहीं दे पाते तो उनका मन परेशान हो जाता। पास में पैसा नहीं होने से शुरू के डेढ़–दो वर्ष साधना में मन नहीं लगा। अग्रहार में जो मित्र सारा धन लेकर भाग गया था उसका स्मरण बार–बार विचलित करता था। इस स्थिति में भी पत्नी की बातों ने उत्साह वर्धन किया। उन्होंने कहा, ''पैसे का इतना ही ख्याल था तो साधना करने ही क्यों आये, तुम साधना करो, बाकी मैं संभालती हूँ।''

धर्मपत्नी के साथ हुए उपरोक्त वार्तालाप को स्मरण कर, इस सम्मानजनक संबंध को पहचानते हुए, महाराज नागराज ने अपने को अत्यधिक सौभाग्यशाली माना, अपनी पत्नी को एक वरदान के रूप में स्वीकार किया। वह देख पाए कि पिछले लगभग 8 वर्षों में, विवाह से लेकर अमरकंटक आने तक, वह अपनी पत्नी के अभिभावक के रूप में रहे थे और अब उनकी धर्मपत्नी उनके अभिभावक के रूप में प्रस्तुत होने लगीं थीं। यह भूमिका उनकी पत्नी ने फिर साधना काल से जीवित रहने तक (2009) निभायी। (आज, 25 फरवरी 2014, सवेरे भी जब बातचीत के दौरान इस बात का सन्दर्भ आया तो आदरणीय बाबाजी ने इस बात को बताया कि उनकी साधना में पहले 30 वर्ष उनकी माताजी का तत्पश्चात् उनकी धर्मपत्नी का तथा पत्नी के बाद उनकी बिटिया सुश्री अम्बा जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है)। उसके बाद उन्होंने अपनी पत्नी को 'महात्मा' कहकर संबोधित करना आरंभ कर दिया था।

कुछ दिन बाद, अकस्मात बच्ची का देहांत हो गया, इस घटना को भी, उस समय की स्वयं की आस्था प्रधान मानसिकता से इसे नियति मान, सहज स्वीकार किया।

इस तरह धीरे–धीरे, डगमगाती स्थिति में, कंदमूल खाते हुए, साधना क्रम आगे बढ़ने लगा। आने के लगभग डेढ़ वर्ष बाद की बात है कि गाँव वालों ने आ

घेरा, बोले, ''आपको हम इस तरह से कंदमूल खाते नहीं देख सकते, आप को हम खाना खिलायेंगे'। नागराज ने कहा, 'यदि आप लोग मेरी साधना में बाधा बनते हो तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा'। अब गाँव वालों को महाराज नागराज व परिवार की निष्ठा पर विश्वास हो गया था और वे नहीं चाहते थे कि महाराज नागराज अमरकंटक को छोड़ें। अतः गाँव वालों ने मिलकर महाराज नागराज के लिए जंगल में एक जमीन का भाग उनके लिए तय कर दिया। आरंभ में गाँव वालों ने ही मिलकर उस खेत को जोता, बोया, काटा और अनाज घर में लाकर रख दिये। बाद में उसी पैदावार को लगाकर ही महाराज नागराज ने और खेत बनाया तथा और अधिक पैदावार बढ़ाया। न ही पैसा लाए, न ही पैसा लगाया। वहीं पैदा किया, वहीं लगाया।

तब भी, बहुत काल तक दिन में एक समय तो कंदमूल ही खाते थे जो क्रम बच्चों के होने बाद भी चलता रहा। तीनों बच्चों (बड़े बेटे मार्कण्डेय, बिटिया शारदा अम्बा तथा छोटे बेटे लक्ष्मीप्रसाद) के साथ जंगल में जाते और चाव से गुलर, वट, करौंदे, सफेद मुसली, मलाईकंद (क्रिच) आदि जंगली फल तथा कंद खाते। घर में खाना भी बहुत प्रकार का नहीं बनता था। या तो चावल बन गया या फिर केवल रोटी बन गयी और सभी ने मिलकर एक साथ, और बहुत बार एक ही थाली में खा लिया। घर में बर्तन भी 2–4 ही थे।

जिन्होंने भी साधना करने का तनिक भी प्रयास किया है अथवा इसके बारे में कुछ भी सूचना प्राप्त की है वह जानते ही होंगे कि साधना करना कितना कठिन हो सकता है। एक प्रेरणावश उन्होंने सूर्य त्राटक करने का निश्चय किया। चार दिन लगातार सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्य को टकटकी बांध देखा और आंखों का सत्यानाश कर बैठे। लगता था कि अब शेष जीवन में देख नहीं पायेंगे। परन्तु संयोगवश एक व्यक्ति, जिनकी पत्नी को महाराज नागराज ने एक असाध्य सी बीमारी से स्वस्थ किया था, घी, दूध व दही के साथ एक टोकरी गुलबकावली फूल भेंट दे गया। महाराज नागराज को अपने माताजी से प्राप्त आयुर्वेद शिक्षा से फूल का रस निकालना व उसको आँखों में प्रयोग करना स्मरण था। गुलबकावली फूल का इसमें प्रयोग सफल रहा और फिर से आंखें स्वस्थ हो गयी।

ध्यान करते समय निद्रा आने लगती तो अमरकंटक की शीत में भी बर्फीले

पानी से भरे हुए ड्रम में खड़े होकर साधना करने लगते। दिन में कभी भी जब पेशाब या शौच जाना होता तो, उसके बाद स्नान करना होता। इस विधि से उन्हें दिन में कई बार स्नान करना होता।

उनकी अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठा की पराकाष्ठा का पता तो इस बात से चलता है कि जब वह ध्यान में बैठते तो लगातार बैठे रहने से पैरों–टांगों में सूजन पैदा हुई तथा उनमें दर्द होना आरंभ हो गया। तब मन में विचार किया कि यदि यह दर्द समाप्त नहीं होगा तो शरीर को ही क्यों न त्याग दिया जाये, शरीर यदि साधना में साथ नहीं देता तो किस काम का। मन के संकल्पवश व कुछ घरेलू उपचारों से दर्द समाप्त हो गया और साधना आगे बढ़ने लगी।

तीनों बच्चों के पालन–पोषण में, स्कूल भेजने में, किसानी में पत्नी का सहयोग करते हुए साधना क्रम की निरंतरता को बनाये रखा। बच्चों को दौड़ा–दौड़ा कर खेलते, खेत ले जाते, खेत जोतते और फिर 12 घंटे साधना भी करते। पत्नी घर की देख–रेख, गाय पालन, घर खर्च व सेवा की जिम्मेदारी संभालती।

समाधि

शास्त्रों में आगम तंत्र उपासना से तीन शक्तियों के जागरण की बात लिखी है– क्रिया शक्ति, इच्छा शक्ति एवं ज्ञान शक्ति। परन्तु इन शक्तियों के जागरण से क्या होता है, इसका महाराज नागराज को अधिक स्पष्ट सूचना नहीं थी। थी तो बस गहरी आस्था अपनी गुरुतुल्य माताजी व गुरुजी द्वारा प्रदान की हुई साधना विधि में। साधना क्रम के प्रथम चरण में प्रार्थना व पूजा–पाठ विधि प्रधान रही जिसके लगभग 5 वर्ष के अभ्यास के पश्चात् अब महाराज नागराज का मन साधना में लगने लगा था। द्वितीय चरण में ध्यान विधि प्रधान रही पर पूजा–पाठ व अर्चना साथ–साथ रही। इसमें परिपक्व होते–होते अगले 5 वर्ष में पूजा–पाठ व अर्चना–प्रार्थना शनैः–शनैः कम होती गयी तथा लगभग 12 घंटे तक लगातार ध्यान लगने लगा।

साधना क्रम के अगले 5 वर्षों में ध्यान की स्थिति 12 घंटे से बढ़कर 18 घंटे तक होने लगी तथा पूजा–पाठ, अर्चना और प्रार्थना की आवश्यकता समाप्त हो गयी। अगले लगभग 5 वर्षों में ध्यान समाधि में विलय होने लगा और साधना के लगभग 20 वर्ष होते–होते 12–18 घंटे अवधि की समाधि स्थिति बनने लगी।

समाधि संपन्न होने का ज्ञान, समाधि के अनंतर, शरीर चेतना तथा चलने फिरने की क्रियाओं द्वारा ही होता था। समाधि में शरीर संवेदनाओं का ज्ञान नहीं रहता था, देश और समय का भी ज्ञान नहीं रहता था। समाधि का स्मरण ही बना रहता था।

एक बार ऐसा हुआ कि समाधि के दौरान एक तूफान आया जिससे कमरे का दरवाजा, जो मात्र दीवारों से अटका हुआ था, गिरा तथा महाराज नागराज की कमर से जा टकराया और एक नुकीला भाग कमर में घुस गया, रक्त भी बहने लगा। किन्तु, समाधि की स्थिति रहने तक उन्हें इसका कुछ भी पता नहीं चला। समाधि के अनंतर शरीर के अध्यास होने के पश्चात् ही चोट का अहसास हुआ तथा उसका उपचार किया।

समाधि के बारे में, महाराज नागराज ने अपना अनुभव कुछ इस प्रकार से वर्णन किया : ''समाधि की स्थिति में मैंने पाया कि मेरा आशा, विचार और इच्छा, जो दौड़ता रहता था कि 'मुझे कुछ चाहिए', 'मुझे कुछ करना है', 'मेरे पास कुछ है' ये तीनों पूर्णतया चुप हो गए। भूत व भविष्य की पीड़ा और वर्तमान से विरोध समाप्त हो गया। इससे हमको समझ में आया कि हमको समाधि हुआ। समाधि से पहले, जिस व्यक्ति ने हमारा पैसा हड़प लिया था, उसके प्रति विरोध बना रहता था। अब उसके प्रति विरोध समाप्त हो गया। इसको हमने उपलब्धि माना, परन्तु मेरी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई प्रश्नों के उत्तर नहीं मिले।

संयम

महाराज नागराज ने स्वीकार किया कि समाधि तो हुई परन्तु, जिस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु साधना की थी वह तो प्राप्त नहीं हुआ था। इस इंतजार में कि किसी भी दिन उन्हें उनकी जिज्ञासाओं का उत्तर मिल सकता है (या ज्ञान या ब्रह्मज्ञान हो सकता है), प्रतिदिन 12–18 घंटे समाधिस्थ होते रहे। इस प्रकार कई महीने उत्तर, ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान के इन्तजार में बीत गये। परन्तु, समाधि में उनको ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ। फिर शंका हुई कि, मुझे समाधि हुई या नहीं हुई इसको कैसे जाँचा जाए? मेरे कहने पर कि 'समाधि में ब्रह्मज्ञान नहीं होता' कौन मानने वाला है? क्योंकि शास्त्रों में तो लिखा है कि समाधि में ब्रह्मज्ञान होता है। इसको कैसे प्रमाणित किया जाय कि मुझे समाधि हुई है?''

इस मानसिक स्थिति में स्मरण आया कि शास्त्रानुसार समाधि की गवाही 'संयम' से होगी। पतंजलि योग सूत्र में 'संयम' विधि का उल्लेख है परन्तु, महाराज नागराज ने 'योग सूत्र' में उल्लेखित विधि को उलट कर 'संयम करने का निश्चय किया। यहाँ महाराज नागराज ने फिर स्व–विवेक से विधि का निर्माण किया। उन्होंने तो इस शरीर यात्रा को शास्त्राध्ययन से उत्पन्न हुई शंकाओं के निवारण हेतु अर्पित करने का संकल्प लिया ही हुआ था। अपने लक्ष्य को पाने की ही धुन लगी हुई थी। अतः पतंजलि योग सूत्र, जो 'अप्राप्त को प्राप्त' करने जैसा अथवा सिद्धि जैसा प्रतीत हुआ, उसे 'अज्ञात को ज्ञात' करने के लिए उलट कर प्रयोग किया। 'धारणा ध्यान समाधि त्रयम् एकत्रत्वात् संयम' सूत्र को उलटकर 'समाधि ध्यान धारणा त्रयम् एकत्रत्वात् संयम' सूत्र तैयार किया। इस विधि से अगले लगभग 2 वर्ष में संयम क्रिया संपन्न हुई। 5 वर्ष तक 'संयम' क्रिया करते रहे और अंततोगत्वा, लक्ष्य की प्राप्ति हुई; अज्ञात, ज्ञात हुआ। धीरे–धीरे समस्त अस्तित्व अपने वास्तविक स्वरूप में दिखाई पड़ने लगा, समझ में आने लगा। संयम में स्थित होने के पश्चात् अस्तित्व को समझने की प्रक्रिया का वर्णन महाराज नागराज ने कुछ इस तरह से किया है।

धीरे–धीरे प्रकृति अपने आप उमड़–उमड़ कर सामने आने लगी। धरती अपने स्वरूप में आई। वनस्पतियाँ अपने स्वरूप में आई। जीव संसार अपने स्वरूप में आया। मानव संसार अपने स्वरूप में आया। पहले धरती आई फिर ऐसी अनंत धरतियाँ आई। यह कोई महीने भर चला होगा। जैसे सिनेमा में देखते हैं वैसा मुझको संसार दिखता रहा। इसके आगे चलने पर एक चट्टान, फिर उसके विस्तार में जाने पर, जैसे चूना पिघलता है वह पिघला, और पिघलकर के फैला और फैल करके फैलते–फैलते उस जगह में आ गया जहाँ उसका हर भाग स्वचालित स्थिति में था। इस स्वचालित वस्तु को मैंने अनेक 'परमाणुओं' नाम दिया। ऐसा मैंने परमाणु को देखा।

... एक दिन मैं संयम में देखता हूँ परमाणु अपने आप एक लाइन में लग गए। एक, दो, तीन, चार,....... उन्हें मैं गिन सकता था। कुछ संख्या के बाद परमाणुओं का अजीर्ण होना मिला। जो परमाणु अपने में से कुछ परमाणु अंशों को बहिर्गत करना चाह रहे हैं उनको मैंने अजीर्ण नाम दिया। उससे पहले कुछ परमाणुओं को भूखे परमाणुओं के रूप में देखा। वे परमाणु अपने में कुछ और परमाणु अंशों को समा लेना चाह रहे हैं। इन दोनों तरह के परमाणुओं के मध्य में मैंने एक ऐसे परमाणु को भी

देखा जो अपने पूँजाकार में घूम रहा है। जबकि बाकी सब परमाणु अपनी जगह में हैं। जब उस परमाणु को देखा तब पता लगा इसकी गठन तृप्ति हो गयी है। इस तृप्त परमाणु को ''गठनपूर्ण परमाणु'' नाम दिया... यही ''चैतन्य इकाई'' है, ''जीवन'' है....

.... रसायन तत्वों के मूल में गए तो उनके मूल में है 'जल'। किसी भी धरती पर पहला यौगिक वस्तु जल ही है। जल धरती पर ही टिकता है। धरती से मिलकर जल अम्ल और क्षार बन जाता है। किसी निश्चित अनुपात में अम्ल और क्षार मिलकर 'पुष्टि तत्व' होता है। किसी निश्चित अनुपात में मिलकर वे 'रचना तत्व' होते हैं। इसको देखा...

... उसके बाद प्राण कोषा के स्वरूप को देखा, प्राण कोषा के मूल रूप में यौगिक क्रिया के स्वरूप में अपने सम्मुख में आते हुए चित्र के रूप में देखता रहा। इसमें मुझे बहुत खुशहाली होती रही। इस तरह हर वस्तु का विस्तार में अध्ययन होता रहा है, इसके अलावा 'पढ़ने' को चाहिये ही क्या? यही 'पढ़ने' की वस्तु रही। ऐसा 'पढ़ते–पढ़ते' मानव आ गया। मानव में प्राण कोषा से रचित शरीर को देखा, समझा। प्राण कोषा पहले स्पष्ट हुए प्राण कोषा कैसे बनते हैं। प्राण कोषा के मूल में प्राण सूत्र, प्राण सूत्र के मूल में पुष्टि तत्व और रचना तत्व। पुष्टि तत्व को प्रचलित भाषा में 'प्रोटीन' तथा रचना तत्व को 'हारमोन' कहा जाता है....

.... प्राण सूत्रों में जब श्वसन और प्रश्वसन की प्रक्रिया शुरू होती है तो उनमें एक खुशहाली दिखाई देती थी। उस खुशहाली के साथ उनमें एक रचना विधि उभर के आ जाती थी। उस रचना में वे संलग्न हो जाते थे। उसके बाद 'बीज–वृक्ष न्याय' विधि से उनकी परंपरा बनी। उस खुशहाली से प्राण सूत्रों में परिवर्तन से दूसरी रचना विधि निकली। दूसरी रचना हुई। वह फिर परंपरा हुआ 'बीज–वृक्ष न्याय' विधि से। इस ढंग से अनेक रचनाएं प्राण सूत्रों से हुई...

... संयम काल में अध्ययन पूर्ण करने में मुझे 5 वर्ष लगे, जब तक मैंने यह नहीं माना कि मेरा अध्ययन पूरा हो गया है इस दृश्य की पुनरावृत्ति होती रही। इससे मैंने माना कि नियति स्वयं प्रगटनशील है। इसमें कोई रहस्य नहीं है...

....स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म सब कुछ देखने पर मैंने निर्णय किया

– 'यही अस्तित्व है' यही व्यापक में सम्पृक्त प्रकृति है। इस बात में जब मुझको पूरा विश्वास हुआ उसके बाद मैंने 'संयम' क्रिया को पूर्ण होना स्वीकार किया...

इस प्रकार महाराज नागराज को अपने सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो चुके थे।

अस्तित्व क्यों है, कैसा है?

ब्रह्म और जगत का क्या संबंध है?

मानव कैसा है, क्यों है?

मोक्ष क्या है?

इन सभी, और इस प्रकार के अन्य सभी प्रश्नों के उत्तर महाराज नागराज को उपलब्ध हो चुके थे। यह कहना तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि समस्त मानव जाति के लिए एक नया ''दर्शन'' उपलब्ध हो गया था। सार रूप में;

1. परंपरा में आदर्शवाद रहस्य में फंसा हुआ था तो आधुनिक काल में भौतिकवाद तर्क में सिमट कर रह गया। इन दोनों प्रयासों से मानव जाति का कल्याण न होने के फलस्वरूप ही 'विकल्प' के रूप में 'अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन' अथवा ''मध्यस्थ दर्शन'' महाराज नागराज जी ने प्रतिपादित किया। अस्तित्व सहअस्तित्व है। अस्तित्व में ही विकास क्रम है, विकास है, जागृति क्रम है, जागृति है, जागृति की निरंतरता है। ब्रह्म सत्यम्, जगत शाश्वत्।

2. प्रत्येक मानव चैतन्य इकाई है जो 'जीवन' और 'शरीर' का एक संयुक्त स्वरूप है। 'जीवन' एक गठनपूर्ण परमाणु है। परमाणु में विकास पूर्वक गठनपूर्णता है। जागृति क्रम में जीवन में दो और पूर्णतायें – क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता है जो मानव परंपरा में ही घटित होता है।

3. ज्ञान के अभाव में ही मानव भ्रमित रहता है, भ्रम अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति एवं अव्याप्ति दोष है। भ्रम मुक्ति ही मोक्ष है।

4. मध्यस्थ दर्शन के मूल प्रतिपादन में सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान व मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान है। सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान है।

यह शिक्षा विधि से अध्ययन गम्य है। ज्ञान से ही मानव अनुभव संपन्न होता है, समस्त आयामों में समाधान संपन्न होता है। सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्नता अनुभव सहित समत्व सर्वशुभ प्रमाण ही समाधि है।

5. ज्ञान सम्पन्नता के प्रमाण रूप है : अनुभव प्रमाण, व्यवहार प्रमाण एवं प्रयोग प्रमाण। यही संयम है। इन के आधार पर ही जीवन यात्रा सफल होने का प्रमाण है।

इस प्रकार ज्ञान संपन्न (अनुभव संपन्न) होने पर महाराज नागराज को प्रश्न विहीन, गलती विहीन, विरोध विहीन, भ्रम विहीन और अपराध विहीन विधि से जीने की समझ उपलब्ध हो गई। इस 'समझ' से परमानन्द की, अत्यधिक तृप्ति की अनुभूति हुई। स्वयं में 'कुछ' पाने के भाव से भर गए। इसके साथ ही पूर्व में मानव जाति के इतिहास में उन सभी महापुरुषों के प्रति जिन्होंने भी पूर्णता के लिए प्रयास किया, कृतज्ञता के भाव से ओत–प्रोत हो गए और मन में आया, ''यह ज्ञान जो मुझे प्राप्त हुआ है, मेरे अकेले का नहीं है अपितु यह सर्व मानव का है और मानव के पुण्यवश ही घटित हुआ है। इसलिए मानव को इसे अर्पित करना है'', तुरंत ही यह विचार आया कि सर्वप्रथम तो स्वयं उन्हें ही इसे जीकर प्रमाणित करना है। अतः प्रश्न मुक्त, गलती मुक्त, विरोध मुक्त, भ्रम मुक्त और अपराध मुक्त अर्थात् 'समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व' विधि से जीने की योजना बनाने लगे। इसके साथ–साथ ही, इस प्रकार जीने को प्रत्येक मानव की आवश्यकता समझते हुए (समाधान, समृद्धि, अभय एवं सहअस्तित्व को मानव लक्ष्य के रूप में पहचानते हुए) इस ज्ञान के लोकव्यापीकरण की योजना बनाने का भी निश्चय किया।

निश्चित आचरण

बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जब कभी घर में खोई हुई वस्तु को ढूंढ़ते हैं तो एक स्थिति ऐसी भी बनती है कि खोई हुई वस्तु तो मिलती है साथ में कई आवश्यक वस्तुएं भी हाथ लग जाती हैं। कुछ ऐसा ही महाराज नागराज के साथ भी हुआ। उन्हें स्वयं के प्रश्नों का उत्तर तो मिला ही साथ में मानव का सार्वभौम निश्चित आचरण (मानवत्व), मानव परिवार व्यवस्था तथा परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहित अखंड समाज व सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया। अभी तक महाराज नागराज का अधिकतम समय ध्यान साधना के लिए समर्पित था।

अब परिवार की आहार, आवास व अलंकार सम्बन्धी आवश्यकताओं को सहअस्तित्व विधि से पूरा करना आरंभ किया जो अंततः अखंड समाज व सार्वभौम व्यवस्था से जुड़ता है।

हम सभी को प्रायः महापुरुष अथवा गुरु कहलाये जाने वाले मानवों के जीने को देखने का अवसर मिलता है और बहुधा हम पाते हैं कि दिन के तथा वर्ष के समय अनुसार उनका आचरण बदलता रहता है। कभी वे बहुत खुश नाचते–गाते दिखते हैं तो कभी बहुत चुप। कभी किसी से बहुत प्यार से बात करते दिखाई पड़ते हैं तो कभी क्रोधित, कभी बहुत उत्तेजित तो कभी एकदम तटस्थ, कभी समाज या राजनीति के उद्धार की बात करते हैं तो कभी संसार को मोह–माया बताकर त्यागने की। कभी सार्वजनिक जीवन जीते दिखाई पड़ते हैं तो कभी एकांतवास अथवा अज्ञातवास में चले जाते हैं। उनके बारे में कुछ भी निश्चित कहना बहुत कठिन है। लगभग सब कुछ मन पर निर्भर करता है। परन्तु जो भी व्यक्ति बाबाजी के साथ जिए हैं तथा उनके संपर्क में आये है वे कह सकते हैं कि उनके बारे में सब–कुछ निश्चित है यहाँ तक कि उनके ध्यानाकर्षण का तरीका भी अर्थात् डांटना। उनसे वार्तालाप करते हुए किसी जिज्ञासु के विचारों की प्रस्तुति में यदि तालमेल का अभाव दिखता तो तुरंत वह उसकी ओर तीव्र ध्वनि द्वारा ध्यान दिलाते जो डांटने जैसा प्रतीत होता है। जैसा ऊपर ध्यानाकर्षण किया गया है, जागृत मानव का आचरण निश्चित होता है जिसे सार्वभौम मानवीयता पूर्ण आचरण कह सकते हैं। उनके जीने में मानवीयता पूर्ण आचरण प्रमाणित हुआ है। यदि उनके संबंध एवं संपर्क में आये प्रत्येक मानव के साथ बाबाजी द्वारा किये व्यवहार का यहाँ वर्णन घटनाओं के रूप में किया जाय तो इस पुस्तक का आकार अत्यधिक बड़ा हो जायेगा और यह कार्य भी दीर्घकालीन हो जायेगा, परन्तु उनके जीने में और सभी के साथ व्यवहार में जो एक निश्चित तरीका रहा है, उसके संक्षिप्त वर्णन से ही उनके आचरण की झलक हमें साफ–साफ दिखाई पड़ती है।

स्वधन : स्वधन के लिए उत्पादन के बारे में बहुधा लोगों ने उनसे यह कहते हुए सुना है कि वह इतने तरीके जानते हैं जितने लोगों के सर पर बाल। इसका कुछ प्रमाण वे युवा उम्र में कई हुनर सीखकर व उत्पादन कार्य जैसे सिलाई, बढ़ईगिरी, गौपालन, कृषि, कुम्हारी, लोहारगिरी इत्यादि करके दे चुके थे। अमरकंटक में उन्होंने प्रधानतः कृषि को स्वधन का साधन बनाया। उन्होंने 80 वर्ष की आयु तक स्वयं श्रम

सहित प्राकृतिक (बिना रसायन व कीट नाशक का प्रयोग किये) कृषि कार्य किया। इसके साथ वह आयुर्वेद के माध्यम से लोगों के असाध्य रोगों को दूर करने का भी कार्य करते रहे। आरंभ में वह लोगों का उपचार कुछ जड़ी बूटियाँ देकर करते थे। परन्तु बाद में आयुर्वेदिक औषधियों का भी उत्पादन करने लगे।

उपकार : उनका हर अनुभूति, विचार, कार्य, व्यवहार, यहाँ तक कि श्वास लेना भी उपकार के लिए समर्पित देखने को मिलता है। तीन आयामों में उपकार को देखा जा सकता है। समझे हुए (यथार्थता, वास्तविकता एवं सत्यता) को समझाना, सीखे हुए (हुनर) को सिखाना तथा किये हुए (कार्य) को कराना। इसमें भी अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था हेतु एवं समकालीन परिस्थितियों में मानव में समझ के अभाव को देखते हुए समझाना प्राथमिकता में आता है। आदरणीय बाबाजी समझाने, सिखाने व कराने के लिए सदैव तत्पर रहे हैं। आज तो 'जीवन विद्या शिविर' (एक सात दिवसीय कार्यक्रम जिसमें 'मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद' का प्राथमिक परिचय, इसके अनुसार जीते हुए व्यक्ति द्वारा, प्रस्तुत किया जाता है।) लेने वाले कई लोग हैं। आरम्भ में बाबाजी स्वयं शिविर लेते थे और ऐसा बताते हैं कि कई बार तो वह सबेरे जब पहला व्यक्ति जगता था तो चर्चा आरंभ करते थे और जब अंतिम व्यक्ति भी सो जाता था तब चर्चा बंद करते थे।

समझाने के लिए वह बिना किसी भेदभाव के किसी को भी कहीं भी मिलने के लिए तत्पर रहते थे तथा शरीर के आराम की अधिक परवाह किये बिना पैदल चलकर, साईकिल पर, स्कूटर पर, बस में या रेलगाड़ी में चले जाते। जिसने जहाँ सोने के लिए बता दिया वहीं सो गए तथा जैसा खाना (शुद्ध शाकाहारी) दिया वैसा ही खा लिया। कभी भी रूप, धन, बल या पद, जाति, धर्म, मत या सम्प्रदाय के आधार पर लोगों के साथ अधिक या कम सम्मान के साथ प्रस्तुत नहीं हुए। देखा तो केवल व्यक्ति के समझने की प्यास व तैयारी। बच्चे, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, ज्ञानी, विज्ञानी, अज्ञानी, धनी तथा निर्धनी सभी के साथ एक समान प्रस्तुत हुए। समझाना एवं अध्ययन कराना व्यक्ति की पात्रता अनुसार रहा।

लोगों के रोग दूर करने में भी उन्हीं से प्रतिफल लिया जो देने में सक्षम होते। अमरकंटक के ग्रामवासियों से, अक्षम से, जिज्ञासुओं से तथा सामाजिक कार्य में लगे लोगों से कभी औषधियों का पैसा नहीं लिया। घर में जिज्ञासुओं व समाजसेवा करने

वालों के लिए सदैव भोजन, औषधि व रहने की व्यवस्था रहती तथा उन्हें बहुधा वस्त्र व धन भी दे दिया करते।

स्वधन में से परिवार की आवश्यकता से अधिक धन को पुस्तकों की छपाई, कई जिज्ञासुओं के परिवार की आवश्यकताओं की आपूर्ति तथा अछोटी (रायपुर) में अध्ययन में लगे लोगों की व्यवस्था में आवश्यकतानुसार लगाते रहे। स्वयं या परिवार के उपयोग के लिए किसी से धन लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस बिंदु पर यदि वार्तालाप होता तो कहते, ''एक पैसा भी हमारे चौके में नहीं आया।''

परिवार : बाबाजी समाधि–संयम के पश्चात् आदर्शवादी/अध्यात्मवादी परम्परा अनुसार त्यागी या विरक्त नहीं बने और न ही धनाढ्यों द्वारा प्रदत्त आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण किसी आश्रम में रहे। बाबाजी समस्त धरती को ही अपना परिवार समझते हुए स्वयं के पुत्र, पुत्रवधु एवं पौत्र, पौत्रियों के साथ पारिवारिक व्यवस्था में जीते रहे हैं। घर में रहने वाले परिजनों के साथ–साथ जिज्ञासुओं का रहना भी पारिवारिक सदस्यों की तरह ही बना रहता है। जिज्ञासुओं के लिए सदैव भोजन, औषधि व रहने की व्यवस्था रही है। न्याय पूर्वक विधि से परिवार के सदस्यों के साथ जीते रहे हैं। सभी पारिवारिक सदस्यों को दर्शन समझने के लिए प्रेरित करते रहे हैं किन्तु ऐसा तय नहीं किया कि पहले उनके परिवार के सदस्य ही समझ लें तभी अन्य को समझाया जाय। जो भी मानव समझना चाहे उसके लिए वे सदैव तत्पर रहे हैं, चाहे फिर वह साथ रहने वाले परिवार का सदस्य हो या वृहद परिवार का।

सबसे बड़े पुत्र श्री नरहरि (जिन्हें साधना से पहले अपने ससुर के पास भेज दिया था) बेंगलुरू में रह रहे हैं। घर में रहने वाले सदस्यों में बड़े पुत्र श्री मार्कण्डेयजी (दादा भाई) व उनकी पत्नी श्रीमती सुनीता जी, पुत्री सुश्री शारदा अम्बाजी (जिन्हें सभी अम्बा दीदी के रूप में जानते हैं), छोटे पुत्र श्री लक्ष्मीप्रसाद जी (मुन्ना भाई) व उनकी पत्नी श्रीमती पूजाजी। दादा भाई अमरकंटक नगर पंचायत में कार्य करते हैं तथा लक्ष्मीप्रसाद जी का अपना एक वर्कशॉप है जिसमें वे लौह कार्य (फेब्रिकेसन) करते हैं। अम्बाजी ने संकल्प लिया कि वे बाबाजी की सेवा तथा 'दर्शन' की स्थापना में इस शरीर यात्रा को अर्पित करेंगी। अतः उन्होंने विवाह नहीं किया। सुश्री अम्बाजी बाबाजी की घोर सेवा के साथ–साथ घर में आये जिज्ञासुओं के

भोजन व रहने की व्यवस्था तथा बाबाजी के आयुर्वेदिक कार्य में भी सहयोग करती हैं। घर में सभी मिलकर (जिनमें घर की महिलाएं तथा जिज्ञासु भी शामिल हैं) रसोई घर व घर की अन्य व्यवस्थाओं को संभाल लेते हैं।

अम्बा जी को स्मरण है कि जब वह तथा भाई छोटे थे तो पिताजी (अर्थात् बाबाजी) किस तरह कन्धों पर बैठाकर पानी की धारा पार कराकर स्कूल छोड़ते थे, कृषि कार्य करते थे तथा दवाइयाँ बनाते थे। बाबाजी उन सबके साथ सुबह चाय पीते, दौड़कर खेलते, एक ही थाली में मिलकर खाना खा लेते, कभी–कभी शाम को उन्हें गिनती व पहाड़ा (counting & tables) भी सिखाते थे। सबके साथ मिलकर जंगल से लकड़ी लेकर आते तथा काटते, क्योंकि उन्हें जंगल में कार्य रहता ही था तो जंगली जानवरों का डर उनके मन से निकालने के लिए कई बार बच्चों को जंगल में ले जाकर वे स्वयं छुप जाते। बाबाजी ने उनको (या किसी को भी) कुछ करने या न करने के लिए आदेश नहीं दिया। अम्बाजी ने विवाह के लिए मना किया तो कभी भी उन पर उसके लिए दबाव नहीं डाला। अध्ययन के लिए सदा प्रेरित करते रहे।

सुनीता भाभी जब वधु रूप में घर में सन् 1984 में आयीं तो उन्हें बाबाजी के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं थी। वैसे भी उन्हें साधुओं और पंडितों के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। परन्तु जब बाबाजी को घर में आने वाले लोगों से बात करते हुए सुना तो न तो उन्हें वे साधू जैसे ही लगे और न ही पंडित जैसे। वे उन्हें दार्शनिक के रूप में स्वीकार कर पायी। जहाँ बाबाजी उन्हें विचारों में दार्शनिक दिखते थे, व्यवहार में एक पिता। पूरे घर में तेजी से घूमते रहते थे और एक–एक व्यक्ति व एक–एक व्यवस्था का ध्यान रखते रहे। प्रारम्भ में ससुर–बहु के रिश्ते में सहज झिझक वश कुछ भी पूछने में डरती थी, किन्तु धीरे–धीरे उन्होंने बाबाजी से समझना शुरू किया। वह उन्हें भगवान की तरह मानती हैं तथा शिविर कर अध्ययन में रत है। जहाँ नवेली दुल्हन के रूप में 1985 में समझ नहीं पायीं थी कि उन्हें अधिक प्यार के कारण या फिर अन्य कारण से घर का कोई कार्य कराया नहीं जाता था, आज घर की व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

पूजा भाभी के पिताजी जब अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव लेकर बाबाजी के परिवार से सन् 1991 की शुरूआत में मिले तो घर में सबसे मिलकर उन्हें बहुत अच्छा लगा। घर में धान की बोरियाँ देखकर एक किसान परिवार जैसा लगा। तुरंत

ही निर्णय लिया और इस तरह पूजा भाभी जुलाई 1991 में छोटी बहू के रूप में आ गयी। यहाँ आकर ही उन्हें बाबाजी की विद्वता के बारे में पता लगा। बाबाजी उन्हें कभी एक परंपरागत ससुर की तरह नहीं लगे। वह शुरू से ही उनसे बात कर पाती थी और आज तक कभी किसी बात को लेकर कोई शिकायत नहीं हुई। उनकी यही इच्छा है कि वह भी बाबाजी की तरह जी पायें। जिस तरह उन्होंने परिवार वालों के साथ तथा अन्य आये हुए लोगों के साथ मधुर सम्बन्ध के साथ जिए हैं वे इस तरह के जीने को बनाकर रख पायें। वह भी घर परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाने के साथ–साथ शिविर कर चुकी हैं तथा अध्ययन की ओर ध्यान दे रही हैं।

श्री मार्कण्डेयजी बाबाजी को अपने पिता के रूप में पाकर अपने जीवन को सार्थक व धन्य मानते हैं तथा उन्हें अपने गुरु के रूप में देखते हैं। परिवार में परंपरा है कि सभी को श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य जी द्वारा दीक्षा दी जाती है, परन्तु किसी कारणवश शंकराचार्य जी से दीक्षा संभव न होने की स्थिति में पिताजी से ही दीक्षा ली जाती है। बचपन में उन्होंने बाबाजी की समाधि की स्थिति को इस तरह से देखा कि जब बाबाजी ध्यान की स्थिति में होते तो उन्हें स्वयं के शरीर का ज्ञान नहीं रहता था। अब वह यद्यपि यह स्वीकार करते हैं कि जहाँ बाबाजी के ज्ञान को समझने के लिए दूर–दूर से लोग आते हैं वहीं उन्होंने एवं परिवार के अन्य सदस्यों ने गहराई में जाकर दर्शन का अध्ययन नहीं कर पाए तथापि उन्होंने बाबाजी से बहुत कुछ सीखा है। सबसे प्रमुख सीख है कि यदि कोई समस्या है तो उसका निदान भी है। अतः उन्हें कभी जीवन में कोई समस्या नहीं दिखती है जिसे वह बाबाजी की कृपा समझते हैं। अब वह मन बना रहे हैं कि 2015 से समझने में जुटना है तथा इस दर्शन के लोकव्यापीकरण में भागीदारी निभानी है।

श्री लक्ष्मी प्रसाद जी (मुन्ना भाई) बाबाजी को एक योगी की तरह समझते हैं। उन्होंने बाबाजी को कभी भी समय बर्बाद करते नहीं देखा। बाबाजी के साधना काल में मुन्ना भाई 5–6 वर्ष के रहे होंगे तब वह देखते हैं कि रात्रि 8 बजे से सुबह 4 बजे तक बाबाजी साधना में रहते तथा दिन में उत्पादन कार्य करते, उनके साथ व भाई बहनों के साथ खेलतें, कुछ लिखते तथा कुछ समय के लिए सोते थे। उन्हें लगता है कि बाबाजी बच्चों को समझते हैं क्योंकि उन्होंने बाबाजी को कभी भी बच्चों को डांटते नहीं देखा। उन्होंने बाबाजी को हमेशा खुश देखा है तथा उन से कुछ प्रमुख बातें सीखी हैं – (1) यदि बच्चा गलती कर रहा है तो हम उसे समझाने में असमर्थ

हैं, (2) श्रम से उत्पादन करो, उपभोग करो तथा दूसरों को भी बचाकर दो। बाबाजी से उन्होंने खेती करना भी सीखा है। आजकल भी खूब श्रम करते हैं तथा खुश रहते हैं। संयमित रहते हैं, स्वस्थ रहते हैं। उनकी योजना है कि 60 वर्ष की आयु में अध्ययन प्रारंभ करेंगे।

श्री साधन भाई जी पहली बार बाबाजी से मिले तो उन्हें इस बात से काफी दुःख हुआ कि उन्हें बाबाजी की बात समझ क्यों नहीं आ रही है। अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब बाबजी ने उनके निवेदन करने मात्र से ही अगला शिविर तय कर दिया। दर्शन को समझने के लिए वह बाबाजी के पास आरंभ में छः महीने के लिए गये और फिर दीर्घकाल तक रह गए, तथा अभी तक अपनी पत्नी एवं बिटिया सहित साथ ही रह रहे हैं। यहाँ परिवार की व्यवस्था, आयुर्वेदिक दवाइयाँ का कार्यभार तथा आने वाले जिज्ञासुओं की जिम्मेदारी में भूमिका निभाते हुए अध्ययन में ईमानदारी से रत हैं। वह बाबाजी को (बहुत अन्य जिज्ञासुओं की तरह) एक दिव्य मानव के रूप में देखते हैं।

महिमा भाभी भी अन्य कन्याओं की तरह विवाह पश्चात् अपने माता–पिता का घर त्याग कर पति के घर शेष जीवन बिताने को तैयार थी। परन्तु यहाँ तो पति का भी अपने तथाकथित परिवार वालों से दूर अपने गुरु जी के घर में रहना हो रहा था। यद्यपि विवाह तय होने की प्रक्रिया में साधन भाई के परिवार वालों के साथ–साथ अम्बा दीदी से भी मिलना रहा (साधन भाई से तो विवाह के पश्चात् ही मिलना हुआ, पहले केवल दूरभाष से ही बात हुई), तथापि पुत्रवधु के रूप में अमरकंटक आने में कुछ आशंका तो थी। परन्तु, अमरकंटक परिवार में आने के पश्चात् न केवल समस्त आशंकाएं दूर हुई बल्कि उन्हें हमेशा ऐसा ही लगा कि वह घर की और पुत्रवधुओं की तरह ही एक पुत्रवधु है। बाबाजी को एक दिव्य दृष्टि युक्त मानव, आयुर्वेद में पारंगत चिकित्सक तथा ज्ञानी पुरुष के रूप में देखा है। अम्बा दीदी के साथ घर में भागीदारी निभाते हुए स्वयं को सौभाग्यशाली समझती हैं।

परिवार के सदस्यों की तरह किसी को भी परिवार में कुछ ही समय रहने से बाबाजी का चारों आयामों (अनुभव, विचार, व्यवहार व कार्य) तथा पाँच स्थितियों (स्वयम्, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) में जीने का स्वरूप स्पष्ट होने लगता है तथा वह एक साथ ज्ञानी, गुरु, परिवार मानव, समाज मानव तथा व्यवस्था मानव के

रूप में दिखते हैं।

सामाजिकता : बाबाजी ने सामाजिक जीवन में एक मर्यादा को बनाकर रखा। कभी भी किसी रोगी से अथवा जिज्ञासु से अकेले में नहीं मिले। बहुत मानवों ने उन्हें धन देने का प्रस्ताव दिया परन्तु उन्होंने प्रत्येक को सच्चाई को समझने का ही प्रस्ताव दिया तथा किसी से चंदे के रूप में धन लेना स्वीकार नहीं किया। अध्ययन में लगने के पश्चात् जिन मानवों ने भी व्यवस्था में तन–मन–धन का योगदान देना चाहा उसका स्वागत किया तथा उसे प्रयोजन के अर्थ में अर्पित कर दिया। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है बाहर का पैसार घर–परिवार में कभी नहीं आया। वह हर क्षेत्र में कार्य करने वाले मानवों से मिले जैसे कि – विज्ञान, तकनीकि, आयुर्वेद, कानून, कृषि, शिक्षा आदि। सभी से उनके क्षेत्रों के बारे में बात करते तथा साथ ही समझने का प्रस्ताव भी रख देते तथा शिविर करने की प्रेरणा देते। शिविर किये लोगों को अध्ययन व समझ कर जीने के लिए प्रेरित करते।

लोकव्यापीकरण

समाधान एवं समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए, जीते हुए एवं स्वयं में सुख, शांति, संतोष तथा आनंद की निरंतर अनुभूति सहज आदरणीय बाबा नागराज जी (उनकी बढ़ती आयु अब 94 वर्ष की व प्रतिभा सम्पन्नता को देखकर लोगों ने उन्हें प्यार से बाबाजी, बाबा नागराज जी आदि संबोधनों से भी सम्बोधित करना आरंभ कर दिया था) निरंतर चिंतन करते कि किस प्रकार से यह ज्ञान या समझ सर्वसुलभ हो, ''... मैं जो अनुभव किया हूँ उसको मैं विनय ही कर सकता हूँ। उसे समझना प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी है और उस जिम्मेदारी के साथ है प्रत्येक की स्वतंत्रता। इच्छा हो तो समझे, अथवा न समझे। विगत में ऐसा कहा जाता रहा कि 'अनुभव' को बताया नहीं जा सकता, किन्तु इस बात की मुझ में स्वीकृति है कि मैंने जो 'अनुभव' किया है, उसमें जो सच्चाई है, 'अनुभव' ही ऐसी वस्तु है जिसे बांस पर चढ़कर चिल्ला कर बोला जा सकता है अच्छे से और सच्चाई एक से दूसरे को समझ में आयेगी। ऐसा मेरा विश्वास है...''

आरंभिक काल में उन्होंने कुछ साधुओं से इस ज्ञान की चर्चा की थी परन्तु शीघ्र ही यह पता चल गया कि अधिकतर साधु न तो ज्ञान की खोज में थे और न ही सघन साधना करने के लिए तैयार थे। वह तो बस कुछ सिद्धियाँ पाना चाहते थे

जिससे या तो भौतिक सुविधा संग्रह कर पायें, सेवा के लिए कुछ शिष्य तैयार कर पाए या फिर अपने दुश्मनों को सबक सिखा पायें। वह 'अपने पराये की दीवार' से मुक्त थे ही नहीं और जो ईमानदारी से साधना में लगे थे उन्हें बाबाजी की बातें अच्छी तो लगती थीं किन्तु साधना वे विगत के आदर्शवादी तरीकों से ही करना चाहते थे।

परम सत्य सह–अस्तित्व सहज अनुभवमूलक प्रमाण बोध पूर्वक चिंतन विधि से उन्होंने परिवार, समाज, शिक्षा, राजनीति, धार्मिकता, व्यापार व प्रकृति इत्यादि की तत्कालीन स्थिति को देखते कई मुद्दों पर विचार किया जिनको निम्न तरह से संक्षिप्त में वर्णित किया जा सकता हैः

(1) परंपरा की समीक्षा व सही प्रस्ताव :

परंपरा में इसके पहले किसी को अनुभव हुआ ही नहीं होगा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। परन्तु किसी भी धार्मिक परंपरा को देखने से इसका प्रमाण न तो लिखित रूप में और न ही 'व्यवस्था' रूप में जीने में मिलता है। इस बात का सम्मान है कि परंपरा में बुजुर्गों ने अपनी तरह से योगदान दिया। घोर तप, साधना व परिश्रम किया तथा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार उपदेश भी दिया। उन सभी महापुरुषों के प्रति कृतज्ञता का भाव सहज है जिन्होंने भी मानव जाति को सही जीने की प्रेरणा दी। परन्तु, आज विश्व में, समाज में, परंपरा में, धार्मिक समुदायों में अनेकानेक गलतियाँ, अपराध व युद्ध (संघर्ष) दिखाई पड़ते हैं। मानव जाति में उनको और अधिक प्रगट करने से कुछ उपलब्धि नहीं होगी। न तो गलती को गलती से, अपराध को अपराध से और युद्ध को युद्ध से रोका जा सकता है और न ही इनका विरोध करने से इनको मिटाया जा सकता है। अतः सही का प्रस्ताव देना ही मानव जाति के लिए उचित होगा। इस प्रकार बाबा नागराज जी ने मानव जाति की संपूर्ण आवश्यकताओं को निम्न प्रकार से पहचाना :

(क) प्रत्येक मानव में स्वस्थ मानसिकता उदय (मानवीयतापूर्ण विचार) के लिए शिक्षा की वस्तु के रूप में लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाजशास्त्र तथा कामोन्मादी मनोविज्ञान के स्थान पर आवर्तनशील अर्थशास्त्र, व्यवहारवादी समाजशास्त्र तथा संचेतनावादी मनोविज्ञान प्रतिपादित किया।

(ख) प्रत्येक मानव परिवार के कार्यक्रम के लिए संग्रह सुविधा के स्थान पर न्याय, समाधान और समृद्धि।

(ग) सामाजिक शांति एवं सर्वशुभ राजनीति के लिए शक्ति केन्द्रित शासन के स्थान पर समाधान केन्द्रित अखंड समाज व्यवस्था।

(घ) प्रत्येक मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अर्थ में हुनर के लिए विखंडनवादी (प्राकृतिक असंतुलनवादी) विज्ञान के स्थान पर सह–अस्तित्ववादी (प्राकृतिक संतुलनवादी) विज्ञान।

(ङ) बौद्धिक समाधान एवं सामाजिकता के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, संघर्षात्मक जनवाद तथा रहस्यात्मक आदर्शवाद के स्थान पर समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद तथा अनुभवात्मक अध्यात्मवाद (सहअस्तित्ववाद)।

(च) रहस्यमूलक ईश्वर केन्द्रित मान्यता तथा अस्थिरता अनिश्चियता मूलक वस्तु केन्द्रित चित्रण के स्थान पर अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन।

(2) शिशु : हर मानव संतान जन्म से ही जिज्ञासु होता ही है, न्याय की अपेक्षा करता ही है, सही कार्य–व्यवहार करना चाहता ही है तथा स्वयं स्फूर्त विधि से सत्य वक्ता रहता ही है, यह हर मानव संतान में सर्वेक्षित रहता है और हर मानव सर्वेक्षित करता है। इस प्रकार प्रत्येक मानव में समाधान, न्याय, धर्म व सत्य को जानने एवं तदनुसार जीने की अपेक्षा बनी ही रहती है जिसके लिए मानव परंपरा में समाधान, न्याय, धर्म, सत्य स्थापित होने की आवश्यकता है।

(3) उद्‌गार–समाधान एवं समृद्धि से जीते हुए उन्होंने स्वयं में निरंतर इन उद्‌गारों को पाया : भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो, धर्म सफल हो तथा नित्य शुभ हो।

(4) सर्व शुभ की कामना : मानव में सर्वशुभ की कामना व अपेक्षा विगत काल से ही रही है। प्रत्येक मानव में बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि चिरापेक्षित

है। किसी भी मानव का लक्ष्य विहीन कार्यक्रम सर्वेक्षित नहीं होता है तथा प्रत्येक मानव सुख, शांति, संतोष एवं आनंद अनुभूति चाहता है।

(5) परंपरा में ऐसा माना जाता रहा है कि प्यासा कुएं के पास जाता है। बाबाजी ने विचार किया कि आधुनिक युग में तो पानी को घर–घर पहुँचाना संभव हो गया है, अतः उन्होंने भी इस ज्ञान को लेकर लोगों के पास जाने का निश्चय किया।

(6) भीड़ या बहुलीकरण : उन्होंने देखा कि अभी तक कोई भी महापुरुष परंपरा में ज्ञानी होने का प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उनके बहुत से शिष्य, उनको मानने वाले तथा नाम से कुछ समुदाय तो सर्वेक्षण में आते हैं। इस धरती पर स्वर्ग तभी संभव हो पायेगा जब अनुभव संपन्न मानवों की परंपरा स्थापित हो जाये। अतः अपने पास बहुत अधिक भीड़ एकत्रित करने की अपेक्षा केवल उन्हीं जिज्ञासुओं को अनुभव बोध कराने का निश्चय किया, संकल्प लिया जिनके लिये 'समझना' प्राथमिक हो गया था। आज अनेक व्यक्ति अध्ययन व तद्नुसार जीने में लगे हुए दिखते हैं।

(7) साधना या अध्ययन विधि : अभी तक परंपरा में ज्ञान प्राप्ति के लिए साधना–तपस्या– समाधि का ही रास्ता बताया गया है। आखिर उन्हें भी तो उनके गुरुजनों ने तथा बुजुर्गों ने समाधि की ही प्रेरणा दी थी। प्रत्येक मानव सुखी होना चाहता है जो अनुभव सम्पन्नता से ही संभव है। परन्तु, जब साधुजन ही विरक्तिवादी साधना के लिए तैयार नहीं दिखाई पड़ते तो अन्य मानवों के बारे में क्या कहा जाये? हर कोई तो परंपरागत साधना के लिए तैयार होगा नहीं। फिर, समाधि से 'अनुभव' तक पहुँचना एक अनिश्चित यात्रा है। जबकि आज लगभग प्रत्येक मानव संतान 20 वर्ष से अधिक आधुनिक शिक्षा में लगाता है। क्यों न इसे शिक्षा की वस्तु के रूप में तैयार किया जाये और अध्ययन विधि विकसित की जाये, जिससे प्रत्येक मानव संतान जब शिक्षण संस्थान से निकले तो समझदारी सम्पन्न हो। अतः अध्ययन विधि को विधिवत् रूप में और उसके लिए संपूर्ण अध्ययन की वस्तु को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का निश्चय किया।

अध्ययन विधि

बाबा नागराज जी ने इस तथ्य को पहचाना कि कोई भी मानव सहज ही यह स्वीकार कर पाए कि जिस ज्ञान का अनुभव उन्हें 20–30 वर्ष की कठिन साधना से हुआ वही ज्ञान का अनुभव किसी भी जिज्ञासु मानव को अध्ययन विधि को प्रयोग में लाने से हो सकता है। उसके लिए जिज्ञासु में दो बातों पर विश्वास होना अति आवश्यक होगा। प्रथम तो उसको यह विश्वास हो कि वे (बाबाजी) ज्ञान संपन्न हैं। द्वितीय यह कि जैसा वह समझे हैं, जैसा उनको अनुभव हुआ है उसका यथार्थ वर्णन कर पाए। अनुभव को शब्दों के द्वारा व्यक्त कर पाये। अन्यथा परंपरा में मानव जाति को विश्वास करने के लिए कोई आधार, कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

परंपरा में देखा गया है कि कुछ मानवों ने अन्य मानवों का विश्वास प्राप्त करने के लिए कुछ असहज क्रियाओं अथवा चमत्कारों (प्राकृतिक नियम विरुद्ध दिखने वाली घटनाओं) का सहारा लिया, या फिर किन्हीं शास्त्रों में 'आप्त वाक्यों' को प्रमाण के रूप में माना। बाबाजी का कहना है अस्तित्व में कुछ भी रहस्य अथवा चमत्कार नहीं है। मानव या तो समझता है या फिर भ्रमित रहता है तथा अनुभव सम्पन्नता का सत्यापन ही आप्त वाक्य है।

स्वयं (बाबाजी) ज्ञान सम्पन्न हैं, इसको कौन प्रमाणित करेगा? या तो कोई दूसरा ज्ञान संपन्न व्यक्ति प्रमाणित करेगा अथवा कोई सार्वभौम आधार होगा। कोई शास्त्र या कोई यन्त्र तो प्रमाण होगा नहीं। निष्कर्ष निकला कि उनका आचरण, उनका जीना ही इसका प्रमाण होगा। इस विचार के साथ, उन्होंने स्वयं के 'अनुभव' के प्रकाश में ऊपर वर्णित मानवीयता पूर्ण आचरण की कसौटी तैयार की, उसके अनुसार निरंतर जिए (इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है) और सभी जिज्ञासुओं तथा हर मानव को स्वयं के जीने को जाँचने के लिए आमंत्रित किया। इस तरह उनका पारदर्शी जीना कोई रहस्य न रहकर सबके लिए 'सही जीने का प्रमाण' और प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुआ।

अनुभव का यथार्थ वर्णन कर पाये हैं इसका प्रमाण क्या होगा? कैसे इस दर्शन पर जिज्ञासुओं को विश्वास होगा? अनुभव मूलक चिंतन विधि से निष्कर्ष निकला कि इसका प्रमाण दो ही होगा : एक तो अध्ययन विधि में जो आरंभिक पड़ाव हैं, जिज्ञासु उन्हें तुरन्त ही प्राप्त कर पाए। दूसरा प्रत्येक मानव उनकी इस विधि के

पीछे की मूल चाहत को देख पाए की चाहत सर्वशुभ की है या सुविधा संग्रह की है जो तत्कालीन अधिकतम साधु–सन्यासियों में सर्वेक्षित होती थी अतः चाहत भी उनके जीने से ही दिखाई देगी जो ज्ञान सम्पन्नता के प्रमाण से जुड़ती है, अतः उपरोक्त विश्लेषण से निष्कर्ष निकला कि ज्ञान सम्पन्नता या अनुभव का प्रमाण मानव का जीना ही है और मानव को ही स्वयं के अनुभव का सत्यापन करना है। पुनः सर्वप्रथम उन्होंने स्वयं का सत्यापन सर्व मानव के लिए प्रस्तुत किया।

इस प्रकार सर्वशुभ की कामना एवं प्रेम से ओतप्रोत तथा अनुभव मूलक चिंतन विधि से स्मरण पूर्वक उन्होंने अध्ययन प्रक्रिया को प्रस्तुत किया, जिससे मानवीय आचरण की परंपरा स्थापित हो सके। इस प्रक्रिया में उन्होंने पाया कि किसी भी अध्यवसायी के लिए अनुभवगामी विधि से अनुभव प्राप्त करने के लिए तीन अर्हताओं का होना आवश्यक है :

(1) जिज्ञासा : सर्वप्रथम अध्यवसायी में सुखपूर्वक जीने के लिए अनुभव की आवश्यकता या अनिवार्यता का होना है। उसे यह समीक्षित हो जाना है कि सुविधा–संग्रह, भोग, अतिभोग व बहुभोग अथवा संवेदनाओं को राजी करने के प्रयास में सुख नहीं है। इस बात की स्वीकृति होना कि निरंतर सुख, शांति, संतोष व आनंद सहज जीने के लिए अनुभव व अनुभव मूलक विधि से जीना ही एकमात्र उपाय है।

(2) अध्ययन की वस्तु : बाबा नागराज जी के लिए साधना काल में अध्ययन की वस्तु अस्तित्व ही रहा। और अन्य कोई मानव यदि कभी अनुसंधान करना चाहेगा तो उसके लिए भी अध्ययन की वस्तु अस्तित्व ही है। परन्तु अध्ययन विधि में अध्ययन की वस्तु अनुभव संपन्न मानव द्वारा समझा गया अस्तित्व, अस्तित्व में प्रकृति, जीवन, मानव व अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था सहज अभिव्यक्ति है। संक्षिप्त में अध्ययन की वस्तु को परिभाषित एवं निश्चित किया : सह–अस्तित्व, विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति।

आरंभ में इस संपूर्ण समझ को सूचना के स्वरुप में एक ही पुस्तक में प्रस्तुत करने का विचार किया। परन्तु मानव जाति में विचारों की विविधता, सर्वमानव के लिए 'अध्ययन वस्तु' की आवश्यकता एवं सर्वसुलभता को ध्यान में रखकर संपूर्ण दर्शन, वाद, शास्त्र को 14 पुस्तकों में लिपिबद्ध किया। विगत में देखा

गया है कि किसी भी नए दर्शन अथवा विचार के बाद अन्य लेखकों द्वारा अनेक टीकाएं तथा व्याख्याएं प्रचलित हो जाती हैं जिससे मूल विचार के गुड़–गोबर होने की संभावना रहती है। परन्तु मध्यस्थ दर्शन रूपी ''अध्ययन वस्तु'' के सूत्र रूप, व्याख्या रूप तथा कई कोणों से लिखे जाने से इस संभावना को भी समाप्त कर दिया।

परंपरा में प्रचलित शब्दों का परिभाषित कर उन्होंने इस प्रकार प्रयोग किया कि अध्ययनकर्ता प्रत्येक शब्द के अर्थ को जानकार अस्तित्व में उस शब्द से इंगित वस्तु को पहचान सकता है, साक्षात्कार कर सकता है तथा बोध कर सकता है। इसके लिए उन्होंने मध्यस्थ दर्शन के वांग्मय में एक परिभाषा संहिता का भी संकलन कर प्रस्तुत किया। तत्पश्चात, 'अध्ययन वस्तु', अध्ययन प्रक्रिया तथा अन्य शंका समाधान के अर्थ में समय–समय पर जिज्ञासुओं के साथ हुए संवादों को भी प्रकाशित कराया। इन सभी वांग्मयों की सूची परिशिष्ट 1 के रूप में संलग्न है।

(3) अभ्यास : आदरणीय बाबाजी ज्ञान या अनुभव संपन्नता के पश्चात् अनुभव मूलक विधि (अनुभव सम्पन्नता के पश्चात् जीना) से चार आयामों में जीते रहे हैं – अनुभव, विचार, व्यवहार तथा व्यवसाय (उत्पादन), एवं इन आयामों के प्रमाण के लिए पंच स्थितियों में जीते हुए अभ्यास करते रहे हैं – स्वयं, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्र। अध्ययन विधि, जो कि अनुभवगामी विधि है (अनुभव सम्पन्नता के लिए जीना), में अध्ययनकर्ता को 'अध्ययन वस्तु' की सूचना के आधार पर जीना है। जीना ही अभ्यास करना है। जिज्ञासु को अनुभव के लिए तीन आयामों में जीने का अभ्यास करना है – विचार, व्यवहार तथा व्यवसाय। पठन अथवा श्रवण करते हुए संपूर्ण अध्ययन वस्तु की सूचना ग्रहण करना है। इसके साथ–साथ, मनन करते हुए 'अध्ययन वस्तु' को स्वयं के विचारों में लाना है। इस तरह, 'अध्ययन वस्तु' के अनुसार व्यवसाय तथा व्यवहार करते हुए यथार्थता बोध एवं अनुभव संपन्नता की ओर गतित होना है।

इस प्रकार यह भी देखा जा सकता है कि वांग्मय का उद्‌देश्य मानव समाज में अध्ययनपूर्वक जागृति की परंपरा स्थापित करने का तथा उसके लिए जीने का

'विकल्प' प्रस्तुत करने का रहा न कि किसी विशेष विचार या साहित्य का विरोध और न ही समाज में कोई आन्दोलन लाना। उनके प्रत्येक विचार, व्यवहार एवं व्यवसाय का लक्ष्य यही रहा कि प्रत्येक मानव समझदार होकर यह पहचाने कि मानव जाति तथा मानव धर्म एक है, तथा वह अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी कर पाए।

उपरोक्त अध्ययन प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक मानव अनुभव सम्पन्न हो सकता है तथा यह प्रक्रिया शिक्षा द्वारा सर्वसुलभ हो सकती है। इस के लिए उन्होंने तीन योजनाओं को प्रस्तुत किया :

(1) जीवन विद्या योजना ('अध्ययन वस्तु' से अवगत होने तथा 'जीवन' के होने की सामान्य जानकारी) : जब तक अध्ययन वस्तु तथा अध्ययन प्रक्रिया समाज में प्रचलित शिक्षा प्रणाली में स्थापित नहीं हो जाती (वस्तुतः, शिक्षा प्रणाली को अध्ययन प्रक्रिया अनुसार व्यवस्थित होने की आवश्यकता है), तब तक प्रत्येक प्रौढ़, युवा व किशोर को शिविर के माध्यम से 'अध्ययन वस्तु' को उपलब्ध करने की योजना प्रस्तुत की। पुनः बाबाजी ने स्वयंमेव शिविर लेना प्रारंभ किया तथा कुछ ही अवधि में अन्य कई लोग शिविर लेने की योग्यता से सम्पन्न हुए।

(2) मानव चेतना विकास मूल्य शिक्षा योजना (शिक्षा के मानवीयकरण हेतु) : 'अध्ययन वस्तु' को शिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रम में शामिल करने हेतु प्रस्तुत करना। इसके लिए देश–विदेश की कई शिक्षण संस्थानों में प्रयोग हो रहे हैं।

(3) परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना (परिवार को समाज की मूल इकाई के रूप में व्यवस्थित होने हेतु) : इसके अंतर्गत उद्देश्य है कि मानव परिवार इस तरह जी पायें कि वह अखंड समाज–सार्वभौम व्यवस्था से जुड़ता हो। आज कई परिवार इस प्रकार के जीने को लेकर प्रयोग कर रहे हैं। इसके अंतर्गत दश सोपानीय व्यवस्था का प्रावधान है जिससे बिना धन व्यय किये एक परिवार तथा ग्राम परिवार से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक के प्रतिनिधित्व प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जा सकता है तथा धरती पर मानव धर्म सफल एवं धरती स्वर्ग हो सकती है।

इस तरह बाबाजी का जीना ही दर्शन व प्रमाण है। उन्होंने किसी नए समुदाय, पंथ, मिशन या सम्प्रदाय का आरम्भ नहीं किया अपितु सर्व मानव के चेतना विकास हेतु सार्वभौम 'अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन' दिया जिसमें सर्व मानव अध्ययन विधि से ज्ञान संपन्न या अनुभव संपन्न हो स्वयं सुख से जी सकते हैं तथा अन्य मानवों के सुखी होने में भागीदारी निभा सकते हैं। सुदूर विगत से मानव की अपेक्षा 'भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो' सफल हो सकती है।

उपसंहार

इस पुस्तक के लेखन के समापन अवसर अगस्त 2015 को आदरणीय बाबाजी द्वारा तथा उनके मार्गदर्शन में मानवीय परम्परा तथा मानवीय शिक्षा संस्कार के लिए किये गये कार्यों पर दृष्टि डालते हैं :–

⇨ जीवन विद्या शिविरों के माध्यम से मध्यस्थ दर्शन से 80,000 से अधिक व्यक्तियों का अध्ययन वस्तु से परिचय हुआ है। परिचय शिविर करने तथा कराने वाले लोगों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। साथ ही छः माह, एक वर्षीय, द्विवर्षीय तथा त्रिवर्षीय अध्ययन शिविरों की संख्या तथा उनमें प्रतिभागी लोगों की संख्या भी बढ़ रही है। इससे यह सिद्ध होता है कि धरती पर मानवीय शिक्षा परम्परा की प्यास सभी को है।

⇨ स्वयं के सत्यापन के अनुसार दर्शन समझ कर अनुभव तथा प्रमाण के लिए प्रयासरत हैं तथा कुछ मानव विकल्प के अनुसार जीते हुए मानवीय शिक्षा एवं मानवीय परंपरा हेतु प्रयासरत हैं।

⇨ कुछ परिवार स्वयं स्फूर्त विधि से परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के लिए ''विकल्प'' के अनुसार जीते हुए अध्ययन करने तथा अध्ययन कराने में विभिन्न स्थानों में प्रयासरत है। इनमें दिव्य पथ संस्थान, अमरकंटक; अभ्युदय संस्थान अछोटी, रायपुर (छत्तीसगढ़); बिजनौर (उत्तरप्रदेश); कानपुर (उत्तरप्रदेश); इंदौर (मध्यप्रदेश) तथा बुल्ढाना (महाराष्ट्र) में सुचारू रूप से अध्ययन व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों जैसे दिल्ली, हैदराबाद, पुणे, सरदारशाह (राजस्थान), बेमेतरा (छत्तीसगढ़), अमरोहा (उत्तरप्रदेश), चकारसी (उत्तरप्रदेश) अहमदाबाद, सूरत (गुजरात), कुकुमा (भुज) तथा

बेंगलोर आदि में नियमित जीवन विद्‌या गोष्ठियाँ तथा शिविरों का आयोजन होता है।

⇨ शिक्षा के मानवीयकरण के प्रयास में शुद्ध रूप में चेतना विकास मूल्य शिक्षा आधारित ''अभिभावक विद्‌यालय'' रायपुर में स्थित है। इस विद्यालय में सभी अध्यापिकाएं/अध्यापक बिना वेतन लिए स्वयं की खुशहाली की अभिव्यक्ति स्वरूप शिक्षा प्रदान करते हैं।

⇨ छत्तीसगढ़ शिक्षा विभाग द्वारा कक्षा 1 से 5 तक की चेतना विकास मूल्य शिक्षा पुस्तकों का प्रकाशन किया गया है। जिनका अध्यापन सभी शासकीय स्कूलों का अनिवार्य भाग है। शिक्षा विभाग के अधिकारी व शिक्षक नियमित रूप से अछोटी में अध्ययन के लिए आते रहते हैं।

⇨ आदरणीय नागराज की द्वारा प्रस्तुत मध्यस्थ दर्शन वांग्मय आधारित चेतना विकास मूल्य शिक्षा प्रारंभिक कोर्स के रूप में देश–विदेश के लगभग 30 शिक्षा संस्थानों में दी जा रही है। (इससे तथा उपरोक्त सभी बिंदुओं से संबंधित विस्तृत जानकारी www.madhyasth-darshan.info वेबसाइट से प्राप्त की जा सकती है।)

''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन'' बनाम ''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्व वाद'' वांग्मय सूची :

दर्शन

★ मानव व्यवहार दर्शन
★ मानव कर्म दर्शन
★ मानव अभ्यास दर्शन
★ मानव अनुभव दर्शन

वाद

★ व्यवहारात्मक जनवाद
★ समाधानात्मक भौतिकवाद
★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

शास्त्र

★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र
★ आवर्तनशील अर्थशास्त्र
★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

संविधान

★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान की सूत्र व्याख्या

अन्य / परिचायत्मक

★ जीवन विद्या – एक परिचय
★ विकल्प
★ अध्ययन बिन्दु
★ परिभाषा संहिता
★ ''संवाद'' भाग – 1, 2 (भाग–3 प्रकाशनाधीन)
★ संकलन (प्रकाशनाधीन)
(संवाद का आडियो–वीडियो भी उपलब्ध है)

Website : www.madhyasth-darshan.info
Email : info@madhyasth-darshan.info